मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१६ प्रथम संस्करण ५,०००
सं० २०२० द्वितीय संस्करण ३,०००

मूल्य साठ न० पै०

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

इस पुस्तकमें प्रायः 'कल्याण' मासिक पत्रके ३० वेंसे ३८ वें वर्षतक 'परमार्थ-पत्रावली' शीर्षकसे निकले हुए मेरे बहुत-से उपयोगी पत्रोंका संग्रह है। पत्रोंके भाव सर्वसाधारणकी समझमें सुगमतासे आ जायँ—इस दृष्टिसे पत्रोंमें यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार संशोधन कर दिया गया है। इनमें अभ्यास-वैराग्य, विवेक-विचार, जप-ध्यान, सत्सङ्ग-स्वाध्याय भगवद्गुणगान-कीर्तन, स्तुति-प्रार्थना, संयम-सेवा, सद्गुण सदाचार, मनोनिग्रह, श्रद्धा-प्रेम, भक्ति-ज्ञान, कर्म-रहस्य व्यापार-सुधार, पारस्परिक व्यवहार-सुधार, स्त्री-शिक्षा एवं ईश्वर, महात्मा, परलोक, गीता, रामायण, महाभारत, इतिहास पुराण आदिके विषयमें उत्पन्न अनेक शङ्काओंका निराकरण किया गया है। इनसे सभी भाइयों, बहनों और माताओंको अपने मनकी शङ्काओंका समाधान करनेमें सहायता प्राप्त हो सकती है। अतः सबसे विनीत प्रार्थना है कि यदि वे उचित समझें तो इनको कृपया मननपूर्वक पढ़कर इनमें लिखी बातोंको अपने अधिकारके अनुसार काममें लानेकी चेष्टा करें।

विनीत

जयदयाल गोयन्दका

श्रीहरिः

विषय-सूची

सदाशिव

शिवाय निःशेषक्लेशप्रशमशालिने । त्रिगुणग्रन्थिदुर्भेद्यभवबन्धविभेदिने ॥

श्रीहरिः

शिक्षाप्रद पत्र

[१]

सादर हरिस्मरण । तुम्हारा पत्र व्यवस्थापक, गीताप्रेसके नामसे दिया हुआ मिला। संसारको अनित्य, क्षणभङ्गुर, मानव-शरीरको दुर्लभ, विषयोंको विषवत् एवं भजन-साधनको अमृतवत् समझते हुए भी तुम्हारी बुद्धि भ्रमित-सी हो रही है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह—आधिपत्य जमाये बैठे हैं लिखा, सो मालूम किया। बुद्धिका भ्रम दूर हो एवं काम, क्रोध, लोभ, मोहका समूल नाश हो जाय—नामोनिशान न रहे, इसके लिये ईश्वरका भजन-ध्यान श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नित्य-निरन्तर करनेकी तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे शनैः-शनैः भ्रमका नाश होकर काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि दुर्गुणोंका भी नाश हो सकता है। गीता-तत्त्वाङ्क या गीता-तत्त्वविवेचनी टीकामें अध्याय ९ श्लोक ३०-३१ और अध्याय १० श्लोक ९-१० और ११ की व्याख्या देखनी चाहिये।

मनकी चञ्चलताके विषयमें कई बातें लिखीं और लिखा कि भगवन्नाम-जप करते समय भी मन इधर-उधर चला जाता है, सो

आपको इस उपर्युक्त पद्यवाक्यके अनुसार ही करना चाहिये। साथ ही धोखा देनेवालोंसे सावधान रहना चाहिये। कोई काँटा बने तो बने, आपको तो फूल ही बनना चाहिये।

३. आप कल्याण-अङ्क तथा गीताप्रेससे पुस्तकें मँगाकर बराबर पढ़ते हैं, सो बहुत उत्तम बात है। यह भी लिखा कि संतोष नहीं हो रहा है, सो संतोष हो इसके लिये भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका ध्यान, गीता-रामायणका पाठ, स्तुति-प्रार्थना श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निष्काम-भावसे नित्य-निरन्तर करते रहना चाहिये। इससे संतोष हो सकता है।

४. गीता पढ़नेके लिये आपकी हार्दिक इच्छा है एवं इसके लिये आप प्रयत्नशील भी हैं, सो उत्तम बात है। संस्कृतका आप शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं, तो इसके लिये संस्कृतके किसी पण्डितसे गीताका शुद्ध उच्चारण करना सीख लेना चाहिये। नहीं तो, संस्कृत श्लोकोंको छोड़कर केवल भाषा-ही-भाषा पढ़ लेनी चाहिये।

× × × ×

आपकी शङ्काओंका अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार उत्तर दे दिया गया। और भी कोई बात आप पूछना चाहें तो निःसंकोच पूछ सकते हैं।

[३]

सादर हरिस्मरण।

तुम्हारा पत्र मिला। समाचार लिखे सो मालूम किये। तुम्हारे बारह वर्षके लड़केकी मृत्यु हो गयी, इससे तुमने अपनेको असहाय

ज्ञा, सो इस प्रकार लड़केकी मृत्यु होनेपर चिन्ता-फिक्र बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। लड़केका जन्म और उसकी मृत्यु प्रारब्धवश होते हैं। जन्ममें हर्ष और मृत्युमें दुःख करना यह अज्ञान ही । इस अज्ञानरूपी अन्धकारको विवेकरूपी प्रकाशसे दूर करना ाहिये। लड़केके मरनेपर चिन्ताकी तो कोई बात है ही नहीं। ावान्‌ने अपनेको जो चीज धरोहररूपमें दी थी, उसे वापस ले ़्या अथवा दूसरे शब्दोंमें भगवान्‌की चीज भगवान्‌के पास चली ी, ऐसा ही समझना चाहिये। चिन्ता-फिक्र करनेकी तो बात ही ा है ? हाँ, मृतक आत्माको शान्ति मिले, इसके लिये भजन-ान एवं भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये।

प्रभुका नाम लेते-लेते तुम्हें पंद्रह दिन हो गये, किंतु शान्ति ़हीं मिली, सो मालूम किया। श्रद्धा-विश्वास, प्रेम और मनसे ागवान्‌का नाम लेना चाहिये तथा भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनी ााहिये; तभी शान्ति मिल सकती है। अभी शरीरका मोह लिखा, ो शरीरमें मोह नहीं करना चाहिये; यही अशान्तिका कारण है। ानन्यभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नित्य-निरन्तर भगवान्‌के भजन-ध्यानमें ़ग जाना चाहिये।

तुम ठंडे जलसे स्नान नहीं कर पाती हो तो कोई बात नहीं ़, स्नान गर्म पानीसे कर लेना चाहिये। पर स्नान रोज करना ़ाहिये। सरदी-जुखाम, बीमारी आदिमें स्नान न हो तो बात ़ूसरी है।

तुम बिस्तरपर लेटे-लेटे नामजप करती हो सो कोई बात नहीं

मनानेमें लाभ ही है, कोई नुकसानवाली बात नहीं है।

५. मृत पुत्रके प्रति कर्तव्य पूछा सो उसकी आत्माको शां मिले, इसके लिये भगवान्से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

६. दिनचर्या लिखकर भेजनेके लिये लिखा, सो पहले अप वर्तमान दिनचर्या लिखनी चाहिये। तुम्हारे लिखनेपर उसं आवश्यक संशोधन किया जा सकता है।

सबसे यथायोग्य।

---
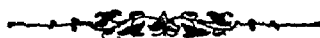
[४]

सादर हरिस्मरण। गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेसे दिया हुआ आपका पत्र मुझे यथासमय मिल गया था, किंतु समयाभावके कारण पत्रका उत्तर देनेमें कुछ विलम्ब हो गया, इसके लिये आपको किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। मेरे पास पत्र बहुत आते हैं। अतः उत्तर देनेमें प्रायः विलम्ब हो ही जाया करता है।

आपने संत-शिरोभूषण, माननीय, सम्माननीय, महाराज आदि प्रशंसाद्योतक विशेषण हमारे नामके आगे-पीछे लिखे एवं 'चरणोंमें शतशः साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणिपात' इस प्रकार लिखा, सो ऐसा लिखकर हमें संकोचमें नहीं डालना चाहिये। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, मुझे तो श्री एवं राम-राम लिखना ही काफी है।

आपने हमारी तत्त्व-चिन्तामणि पढ़ी एवं पारस्परिक परिचय न होनेपर भी हमें संत मानकर हमारे चरणोंकी सेवा करनेकी

अपनी इच्छा लिखी, सो आपके भावकी बात है; किंतु मैं इस योग्य नहीं हूँ। जिन संतोंकी चरण-सेवासे कल्याण हो जाय, ऐसे संतोंको हमारे नमस्कार हैं।

भक्तिमती श्रीमीराबाईका चरित्र सुनकर किसी वाद्ययन्त्रको प्राप्त कर उसे बजाते हुए भजन-कीर्तन करनेकी आपको इच्छा हुई एवं आपने वाद्ययन्त्रके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की तथा दिलरुबा नामक वाद्ययन्त्र भी भगवत्कृपासे आपको मिल गया, अब आप उसपर भगवान्‌के भजन-कीर्तन नहीं करते हैं, सो मालूम किया। भजन-कीर्तन तो आपको करने ही चाहिये। भजन-कीर्तन करनेमें आपके कोई विघ्न आता हो तो उसके नाशके लिये आपको भगवान्‌से रो-रोकर करुणभावसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् बड़े दयालु हैं। साधककी मदद करनेके लिये वे हर समय तैयार रहते हैं। उनसे श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रार्थना करनेभरकी देर है।

आपने अपने लिये अहंकारी, अज्ञानी, पापी, नीच आदि शब्दोंका प्रयोग किया एवं हमारे लिये निरभिमानी, कृपालु, दयालु, ज्ञानी आदि शब्द लिखे, सो इस प्रकार हमारी प्रशंसा एवं अपनी निन्दाके शब्द नहीं लिखने चाहिये।

हमारी प्रशंसा करते हुए आपने लिखा कि आपके भाव एवं आपके विचार कितने अच्छे हैं कि तत्त्व-चिन्तामणिमें भरतजीका विरह पढ़ते-पढ़ते नेत्रोंमें आँसू आने लगते हैं तथा इसके लिये हमें धन्यवाद दिया, सो इसमें हमें धन्यवाद देनेकी बात ही क्या है?

भरतजीका प्रसङ्ग ही ऐसा है, यह तो भरतजीके ही त्याग और प्रेमकी महिमा है।

आपकी बीस वर्षकी अवस्था है। आपकी पिछले साल शादी होनेवाली थी। भगवान्की भक्ति करनेके उद्देश्यसे आपने शादी करनेसे इन्कार कर दिया, इसपर कन्यापक्ष तथा और लोगोंने आपको नपुंसक कहा आदि सभी बातें मालूम कीं। आपकी इच्छा भगवान्की भक्ति करनेकी है सो बहुत उत्तम है; किंतु विवाह करनेमें कोई दोषकी बात नहीं है। माता-पिताका आग्रह हो तो आप विवाह कर सकते हैं।

आपके माता-पिताने आपका नाम कृष्णदास रक्खा एवं लोग भी आपको इसी नामसे पुकारते हैं; किंतु कृष्णकी एक मिनट भी चाकरी नहीं होती, इसलिये कृपा करनेको लिखा, सो मालूम किया। हममें कृपा करनेकी सामर्थ्य है ही कहाँ ? कृपा करनेवाले तो एकमात्र भगवान् ही हैं, उनकी कृपा है ही, जो कि उन्होंने मनुष्यका शरीर कृपा करके प्रदान किया एवं अपने कल्याणके लिये साधन भी अवगत करा दिया। अब अपना कर्तव्य समझकर नित्य-निरन्तर निष्कामभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्का भजन, ध्यान, पूजा-पाठ, स्तुति-प्रार्थना आदि करनेकी ही कमी है। इसके लिये तत्परता एवं उत्साहसे चेष्टा करनी चाहिये।

आपने भगवान्के भक्तोंकी प्रशंसा की, सो उनकी प्रशंसा तो जितनी की जाय उतनी ही थोड़ी है; किंतु ऐसे सच्चे भगवद्भक्त बहुत थोड़े ही होते हैं, उनकी पहचान करना जरा कठिन है। हम तो साधारण आदमी हैं।

आप कल्याणके ग्राहक हैं एवं बराबर कल्याण पढ़ते हैं, सो अच्छी बात है।

आपने अपनेको विषयरूप त्रिगुणात्मक अन्धकारमें लिखा एवं सुबोध तरणी होकर बचानेके लिये लिखा, सो ठीक है। इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। वे ही बचानेवाले हैं।

आपने लिखा कि गुरु मिलते हैं, किंतु सद्गुरु नहीं मिलते, सो सद्गुरु भगवान् हैं ही। उन्हें माननेकी ही कमी है। उन्हें सद्गुरु मानकर और समझकर उनकी शरण होकर साधन करना चाहिये।

आपने ऋषिकेश-सत्संगमें सम्मिलित होनेकी अपनी इच्छा लिखी, सो उत्तम बात है। ऋषिकेशमें लगभग अप्रैलसे जुलाईतक गीताभवनमें सत्सङ्ग हुआ करता है। आप वहाँ आ सकते हैं।

सबसे यथायोग्य।

---

[५]

सप्रेम राम-राम ! आपका पत्र मिला। समाचार लिखे सो मालूम किये। आपके चित्तमें अशान्ति रहती है एवं संसारकी ओर बारंबार मन जाता रहता है, सो मालूम किया। संसारमें आसक्ति और ममता होनेके कारण ही बारंबार मन इधर-उधर जाता है। संसारके पदार्थोंसे आसक्ति और ममता हटाकर भगवान्‌में प्रेम करना चाहिये। भगवान्‌का भजन-ध्यान, स्तुति-

प्रार्थना आदि करनेसे ही शान्ति मिल सकती है। इनमें मन नहीं लगे तो एकान्तमें बैठकर रो-रोकर करुणभावसे बारंबार भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान् बड़े दयालु है। उनकी कृपाके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है। इस बातपर पूरा विश्वास रखना चाहिये। संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर, अनित्य एवं दुःखरूप समझकर गीता अध्याय ५ श्लोक २२, अध्याय ६ श्लोक २६, ३५ और ३६ का अर्थ गीतातत्त्वविवेचनी टीकामें समझकर उसके अनुसार साधन करनेकी खूब तत्परता एवं उत्साहसे चेष्टा करनी चाहिये। भजन-ध्यान न होनेपर मृत्युको नजदीक और समयको अमूल्य समझकर मनमें सच्चा दुःख एवं सच्चा पश्चात्ताप होना चाहिये तथा आत्मोद्धारकी इच्छाको खूब तीव्र करना चाहिये। परमात्माकी शरण लेकर उन्हींकी कृपाके बलपर साधनको खूब बढ़ाना चाहिये। यही सच्चा एवं वास्तविक रास्ता है। इस प्रकार करनेसे ही सच्ची शान्ति एवं सच्चे सुखकी प्राप्ति हो सकती है।

मनके प्रतिकूल कार्य होनेपर दुःख होता है, यह अज्ञान ही है। इस अज्ञानरूपी अन्धकारको विवेकरूपी प्रकाशसे दूर कर देना चाहिये। भगवान्‌के प्रत्येक विधानको मङ्गलमय ही समझना चाहिये एवं प्रतिकूलतामें भगवान्‌की विशेष कृपाका अनुभव करके खूब प्रसन्न होना चाहिये।

गीता अध्याय ४ श्लोक ११ में भगवान् जो बात कहते हैं, वह बिल्कुल ठीक है। उसका मतलब यह नहीं कि भगवान्‌को एक बार याद कर लिया तो फिर बार-बार याद करनेकी

आवश्यकता ही नहीं है। भगवान्‌को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अनन्यभावसे नित्य-निरन्तर याद रखना चाहिये। गीता अध्याय ८ श्लोक ७ और १४ की तत्त्वविवेचनी टीका देखनी चाहिये। उसमें अनन्यभावसे भजन करनेका महत्त्व बताया गया है।

आपने लिखा कि गीता अध्याय ९ श्लोक २७ के अनुसार सब काम श्रीभगवान्‌के अर्पण करनेकी चेष्टा करनेपर भी बहुत कामना हो जाती है, सो मालूम किया। जबतक कामनाएँ रहती हैं, तबतक शरण होनेमें ही कमी है। आपके कामनाएँ होती हैं तो आप अभी वाणीसे ही भगवान्‌के शरण हुए हैं, मनसे नहीं। मनसे सब कुछ भगवान्‌के अर्पण करके उनके शरण होनेपर फिर कामनाएँ नहीं हो सकतीं। यह सिद्धान्तकी बात है।

× × ×

साधनकी बात लिखनेके लिये लिखा, सो ठीक है। भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपका ध्यान निरन्तर निष्कामभावसे विश्वास और प्रेमपूर्वक करनेकी तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये। यह जो मनुष्य-शरीर मिला है, यह भगवान्‌की बड़ी भारी दयासे ही मिला है। इसके रहस्यको समझकर भगवान्‌के आदेशानुसार इसे अच्छे-से-अच्छे काममें ही लगाकर जीवनको सफल बनाना चाहिये। भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझकर भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम बढ़ाने चाहिये।

सबसे यथायोग्य!

सप्रेम राम राम !

आपका पत्र मिला । समाचार सभी मालूम किये । अ
पत्रका क्रमशः उत्तर नीचे दिया जा रहा है—

आप............के प्रथम श्रेणीके मैजिस्ट्रेट हैं, सो ज्ञा
किया । आपने अपने इस कामको घोर तामसिक काम लिखा ए
पूछा कि आदर्श मैजिस्ट्रेट कैसे बना जाय ? सो ठीक है । मान
बड़ाई, प्रतिष्ठा एवं सब प्रकारके आरामका त्याग करके किसीके
दबाव या प्रभावमें न आकर, बिना कुछ भी लिये सत्यता और
समताका बर्ताव करनेसे आप एक आदर्श मैजिस्ट्रेट बन सकते
हैं । आपको लोभ और मोहसे कोसों दूर रहना चाहिये । इनके
फंदेमें नहीं फँसकर प्रेम, विनय, उदारता और सत्यता आदिको
अधिक-से-अधिक अपनाना चाहिये । इनका कभी त्याग नहीं
करना चाहिये । जहाँ अपने किसी भी प्रकारके स्वार्थका सम्बन्ध
नहीं होगा, वहाँ आदर्शता आ सकती है ।

आपने लिखा कि मनमें संकल्प-विकल्प होते रहते हैं,
अहंभावना बनी है, दूसरोंकी त्रुटियाँ देखनेमें सुख मिलता है, सो
सब मालूम किया । 'आखिर ये अवगुण कबतक रहेंगे'—आपने
पूछा सो ठीक है । इन्हें जब वास्तवमें अवगुण मानकर इनसे
घृणा की जायगी, तब इनका स्वयमेव ही अभाव हो सकता है ।
संसारमें आसक्ति रहनेसे ही तरह-तरहके संकल्प-विकल्प होते
रहते हैं । संसारको नाशवान्, क्षणभङ्गुर एवं अनित्य समझकर

उससे वैराग्य करना चाहिये । 'अहम्'—'मैं हूँ' इस अहं-भावनामें अज्ञान ही कारण है, जिसका नाश ज्ञान होते ही हो जाता है । ईश्वरविषयक ज्ञानके लिये सत्सङ्ग करना चाहिये एवं गीताप्रेसकी धार्मिक पुस्तकोंका स्वाध्याय करना चाहिये । उन्हें समझनेकी कोशिश करनी चाहिये । दूसरोंके दोषोंको देखनेमें सुख मिलता है, यह भी अज्ञान ही है । जिसका परिणाम बहुत खराब है । दूसरोंके अवगुण देखनेसे वे अवगुण अपनेमें आते हैं एवं जिसके अवगुण देखे जाते हैं, उससे द्वेष बढ़ता है । इसलिये सबमें गुणोंका दर्शन करना चाहिये ताकि अधिकाधिक प्रेम बढ़े एवं अपनेमें गुणोंका ही प्रादुर्भाव हो । जबतक भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती है, तबतक ये अवगुण किसी-न-किसी रूपमें रह ही जाते हैं । वास्तवमें ये अवगुण ही भगवान्‌की प्राप्तिमें बाधक हैं । इसलिये इन अवगुणोंका परित्याग करने तथा ईश्वरकी प्राप्ति करनेके लिये जीतोड़ परिश्रम करना चाहिये ।

आपके चाचाजी डिस्ट्रिक्ट तथा सेशन्स जज थे, वे अपनी पत्नी तथा छः छोटे-छोटे बच्चोंको छोड़कर स्वर्गलोक सिधार गये, लिखा सो संयोगकी बात है । जो जन्मता है, उसे एक दिन निश्चय ही मरना पड़ता है । आपने लिखा कि 'उन्हें १०००) मिलता था । इस दुःखको किस प्रकार सहन करना चाहिये' सो ठीक है । इसे भगवान्‌का विधान मानकर संतोष करना चाहिये एवं आपके चाचाजीका कल्याण हो, इसके लिये भगवान्‌का भजन-ध्यान और स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये । चाचीजी आदिको कम-से-कम

खर्चा लगानेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये एवं उन्हें पेंशन मिल सके, इसके लिये कोशिश करनी चाहिये।

जैन-दर्शन एवं वैष्णव-दर्शनका अन्तर आपने पूछा, सो ठीक है। जैनियों तथा वैष्णवोंके मतमें काफी अन्तर है; दोनोंका विभिन्न मार्ग है। सब बातें पत्रमें नहीं लिखी जा सकतीं। कभी आपसे मिलना होगा तो आपके पूछनेपर बतायी जा सकती हैं। पुनर्जन्म एवं कर्मफलको दोनों मानते हैं। प्रकृति एवं प्रकृतिका कार्य जड है, यह भी दोनों ही मानते हैं। इन बातोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

× × ×

आपने लिखा कि मेरे-जैसे जीवकी गति आप-जैसे संतोंके चरणरजसे होगी, सो निगाह किया। मैं एक साधारण आदमी हूँ। गति तो भगवान्‌की कृपासे ही हो सकती है।

सबसे यथायोग्य।

---

[७]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण!

आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। उत्तर इस प्रकार है—

आपको झूठ बोलने और पाप करनेमें जो हिचक नहीं होती और डर नहीं लगता, इसका तो यह कारण है कि उनसे होनेवाले

परिणामपर आपका विश्वास नहीं है तथा वर्तमानमें झूठ बोलकर और पाप करके आप किसी-न-किसी प्रकारकी भोगवासनाकी पूर्ति करना चाहते हैं, पर वास्तवमें यह बड़ी भारी भूल है। सुखभोगकी इच्छा कभी भी पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि भोगोंकी प्राप्ति इच्छासे नहीं होती। ये तो कर्मफलके रूपमें मिलते हैं और जैसे-जैसे मिलते हैं, इच्छाको बढ़ाते रहते हैं; इस परिस्थितिमें इच्छाकी पूर्ति कैसे हो। उसकी तो विचारद्वारा निवृत्ति ही हो सकती है।

आपने लिखा कि धर्म क्या है और पाप क्या है? उसका मुझे ज्ञान नहीं है, सो ऐसी बात नहीं है। ज्ञान तो आपको अवश्य है, पर आप उस ज्ञानका आदर नहीं करते। आप समझते हैं कि झूठ बोलना बुरा है—पाप है। झूठ नहीं बोलना चाहिये—ऐसा दूसरोंसे कहते भी हैं। यदि कोई बोलता है तो उसका झूठ बोलना आपको बुरा भी लगता है, तथापि आप झूठ बोलनेके लिये विवश हो जाते हैं, यही अपने ज्ञानका अनादर करना है। यदि आप जितना जानते हैं, उतने धर्मका पालन करना आरम्भ कर दें तो आवश्यक जानकारी स्वयं प्राप्त हो सकती है; यह भगवत्कृपाकी महिमा है।

'भगवान् क्या हैं'—यह जानना नहीं बनता, क्योंकि भगवान् मनुष्यकी ज्ञानशक्तिके बाहर हैं। भगवान्पर तो विश्वास किया जा सकता है, उनको माना जा सकता है, उनकी महिमा और प्रभावका दर्शन कर, सुनकर, समझकर और मानकर उनपर निर्भर हुआ जा सकता है। ऐसा करनेपर साधक कृतकृत्य हो सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

भगवान् अकारण ही कृपा करनेवाले हैं, यह ध्रुव सत्य है तभी तो आप और हम सब लोग जो कि उनको नहीं मानते वे और जो उनको मानते हैं वे भी उनकी बनायी हुई हवा, अ जल, प्रकाश आदिका बिना ही किसी प्रकारका मूल्य दिये उपभ कर पाते हैं। यदि वे अकारण कृपालु नहीं होते तो क्या इन रोक नहीं लगा देते, क्या टैक्स नहीं बाँध देते, पर वे ऐसा नह करते; क्योंकि वे उदारचित्त हैं।

जो यह बात मान लेता है कि भगवान् अकारण ही कृपाल हैं, वह तो उन्हींका होकर रहता है, वह फिर उनको भूल ही कैसे सकता है।

आप लिखते हैं कि मुझे भगवान्को पानेकी इच्छा नहीं है, इससे तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि न तो आपको यह विश्वास है कि भगवान् अकारण ही कृपालु हैं, न उनकी महिमाका ही ज्ञान है और न उनकी सत्तापर ही पूरा विश्वास है; क्योंकि जो यह समझता है कि भगवान् किसको कहते हैं, वे क्या कर सकते हैं, क्या कर रहे हैं, उनमें क्या-क्या गुण हैं, उनको प्राप्त होना क्या है? इस रहस्यको जाननेवाला भला उनको बिना प्राप्त किये कैसे रह सकता है।

आपकी जो यह मान्यता है कि बिना छल, कपट और चालाकीके मुसीबत नहीं टलती, यह सर्वथा निराधार है। छल, कपट और चालाकीका ही परिणाम तो मुसीबत है, इसी कारण एक टलती है तो दूसरी आ जाती है। छल, कपट और चालाकीका सर्वथा त्याग

कर देनेपर ही वास्तवमें मुसीबत सदाके लिये टल जाती है, यह समझना चाहिये ।

आपने लिखा कि मैं क्या हूँ, कौन हूँ, यह समझमें नहीं आता । इसका तो यह अर्थ होता है कि वास्तवमें आप इसे समझना ही नहीं चाहते । मुसीबत जिसपर आती है, जो उसे टालना चाहता है, जिसे मुसीबतका ज्ञान है, वही आप हैं ।

आपने लिखा कि 'विश्वम्भर, करुणानिधान, दयासिन्धु, दयालु, प्रभु इस प्रकारके शब्दोंका तो प्रयोग ही नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं'—सो यह आप किस आधारपर लिखते हैं जब कि आपको यही पता नहीं है कि मैं कौन हूँ ।

आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती, यह तो उचित ही है । यदि आपकी या इसी प्रकारके भाववाले अन्य मनुष्योंकी इच्छा पूर्ण होने लगे तो संसारमें सारा काम अव्यवस्थित हो जाय; क्योंकि आपकी इच्छाओंमें तो दूसरोंका अहित और अपना स्वार्थ भरा हुआ है, तभी तो आप पापमय कर्म करते हैं और भले-बुरे सभी मनुष्योंकी निन्दा करते हैं ।

यदि आपको अपने जीवनसे घृणा होती है, आपके मनमें अपना सुधार करनेकी इच्छा होती है तो समझना चाहिये कि भगवान्की बड़ी कृपा है । सुधार चाहनेवालेका सुधार होना कठिन नहीं है, दुःखोंसे छूटनेका उपाय तो यही ठीक मालूम होता है कि उस दुःखहारी प्रभुकी शरण ग्रहण करके अपने विवेकका

न्याय्य समझता है, उसे ठीक उसी प्रकार करे, किसी प्रकारके लाभ, भय या मोहसे अपने विवेकके विरुद्ध कोई काम न करे इस विवेककी रक्षाके लिये भारी-से-भारी विपत्तिके भयसे न डरे उस विपत्तिको भगवान्‌का प्रसाद समझकर हर्षपूर्वक सहन कर ले पर भगवत्-कृपासे मिले हुए विवेकका अनादर न करे तथा बड़े-से बड़े प्रलोभनमें आकर भी विवेकके विरुद्ध कोई काम न करे । यदि कोई भूल हो जाय तो मालूम होते ही उसे फिर न करनेका दृढ संकल्प करे, भगवान्‌से और जिसके साथ गलती हुई हो, उससे क्षमा माँगे । इस प्रकार विवेकपूर्वक कार्य करना ही मनुष्यका कर्तव्य है ।

(२) गृहस्थमें रहते हुए जो स्त्री-प्रसङ्गादि भोगोंका त्याग है, यह कर्मका त्याग नहीं है । कर्म और भोगमें बड़ा अन्तर है । भोगोंका त्याग करनेके लिये तो भगवान् जगह-जगह संकेत करते हैं । (गीता अ० ५ श्लोक २२ और अ० २ श्लोक १४ देखें) अतः भोगोंका त्याग तो साधकको अवश्य करना चाहिये, पर अपनी शक्तिके अनुसार अतिथि-सेवा, यज्ञ, दान, संयम, कुटुम्बपालन आदि जो गृहस्थोपयोगी कर्तव्य कर्म हैं, उनका त्याग नहीं करना चाहिये । उनका पालन प्रश्न १ के उत्तरमें लिखे हुए प्रकारसे करते रहना चाहिये ।

(३) पुत्रका होना साधकके लिये आवश्यक नहीं है । उसको तो समझना चाहिये कि भगवान्‌के नाते समस्त विश्व ही हमारा कुटुम्ब है । दूसरे प्रकारसे समझें तो एक प्रभु ही अपना है । माता-पिता, भाई, पुत्र-स्त्री आदि सभी भगवान्‌की चीज हैं—ऐसा

मानकर सबसे ममता उठाकर एकमात्र भगवान्में ममता करे। और तो क्या, शरीरतकको भी अपना न समझे।

(४) भगवान्को पानेकी इच्छा कर्मफलकी इच्छा नहीं है; क्योंकि भगवान्का मिलना किसी भी कर्मका फल नहीं है। भगवान् तो प्रेमसे मिलते हैं और उनके पानेकी लालसा, उनकी याद, उनके लिये व्याकुल होना, उनका वियोग असह्य होना—ये सभी प्रेमके ही अङ्ग हैं। भगवान्का जो इस प्रकारका स्मरण है, वही तो भजन और भक्ति है। यह कर्मका फल कैसे हो सकता है? इस भजनके बदलेमें भगवान्के सिवा किसी अन्य वस्तुको चाहना ही सकामभाव है, वह नहीं होना चाहिये।

(५) भक्तोंमें उत्तम-मध्यम श्रेणी तो अवश्य होती है, पर उस श्रेणीका विभाग शास्त्रीय ज्ञान या बुद्धिके विकासके अनुसार नहीं होता। श्रेणीका विभाग तो उनके भावके अनुसार होता है। जो साधक सबमें भगवान्का दर्शन करता है, सबको भगवान्से उत्पन्न और उन्हींकी वस्तु समझकर अपने कर्मद्वारा सबकी सेवा करता है, किसीका अहित न तो चाहता है और न करता ही है तथा भगवान्से या अन्य किसीसे भी अपने लिये किसी प्रकारका सुख नहीं चाहता, वही उत्तम भक्त है। शबरी, मीरा, गोपियाँ, ग्वाल-बाल आदि बहुत-से भक्त हो चुके हैं, जो कि शास्त्रज्ञ न होनेपर भी उच्चश्रेणीके भक्त माने गये हैं। भगवान् तो एकमात्र प्रेमका ही नाता मानते हैं।

(६) भगवान्‌की अनन्य भक्ति (प्रेम)—यह साधन बड़ा ही उत्तम है। प्रश्न ५ के उत्तरमें सब बातें लिखी ही हैं अतः साधकको चाहिये कि वह प्रभुके विधानानुसार कहीं भी रहे चाहे घरमें रहे चाहे वनमें, उसकी प्रत्येक क्रिया साधनरूप होनी चाहिये। खाना-पीना, सोना-जागना तथा जीविकाके लिये कर्म करना, इसके सिवा बालकोंका पालन-पोषण, गृहकार्य आदि सभी क्रियाएँ साधनरूप होनी चाहिये। जैसा कि प्रश्न १ के उत्तरमें लिखा है, उस भावसे की हुई सभी क्रियाएँ साधन हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध भगवान्‌से है। अतः भगवान्‌की स्मृति अपने-आप रहती है।

(७) प्रश्न २ के उत्तरमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि स्त्री-प्रसङ्गादि भोगोंका त्याग कर्मका त्याग नहीं है एवं उनका त्याग भक्तिमें सहायक है, बाधक नहीं है। भोग और कर्तव्य कर्म एक नहीं है; यह भेद समझ लेनेके बाद कोई शङ्का नहीं रहेगी।

(८) भाग्यमें जिस प्रकारकी परिस्थितिका सम्बन्ध होना बताया गया है, वह अवश्य होता है, परंतु प्राप्त परिस्थितिमें सुख-भोगका त्याग मनुष्य कर सकता है; क्योंकि वह पुण्यका फल है। मनुष्य दूसरेको दान कर सकता है अन्यथा यज्ञ, दान, तप, संयम आदि नये कर्म कैसे कर सकेगा। शेष उत्तर प्रश्न २ के उत्तरमें आ ही गया है।

(९) अन्त समयमें जिस भावको स्मरण करता है उसीको प्राप्त होता है। यह सर्वथा सत्य है। इसीलिये भगवान्‌ने निरन्तर

रण करनेके लिये कहा है। अतः साधकको यह निश्चय रखना ाहिये कि जो उस प्रभुके आश्रित और उन्हींपर निर्भर हो जाता ै, जिसको दूसरे किसीपर न तो भरोसा है और न किसीका हारा ही है तथा जिसको अपने बल-बुद्धि और गुणोंका अभिमान हीं है, जो उनके प्रेममें विह्वल और व्याकुल रहता है, उसे भगवान् जीवनकालमें ही बहुत शीघ्र मिल सकते हैं। यदि किसी कारणवश व्यवधान पड़ जाय तो अन्त समयमें वह ऊपरसे बेहोश होनेपर भी भीतरमें अपने प्यारे प्रभुको नहीं भूल सकता। क्योंकि अपने ऐसे भक्तको भगवान् स्वयं नहीं भूल सकते; अतः भक्तको इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

(१०) भगवान्‌के अनन्य प्रेमी भक्तका इस पाञ्चभौतिक शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसका सम्बन्ध तो एकमात्र अपने परम प्रियतम प्रभुसे रहता है। अतः उस शरीरको चाहे जीव-जन्तु खाये, चाहे जलमें प्रवाहित कर दिया जाय, चाहे अग्निमें भस्म कर दिया जाय, उसके लिये सब एक ही है। उसे किसी प्रकारका दोष स्पर्श नहीं कर सकता। एवं इसमें तो कोई दोषकी बात ही नहीं है।

(११) शरीरनिर्वाहके लिये मनुष्यको अपने वर्णाश्रमानुसार ही कर्म करना चाहिये। यह ठीक है। पर आपत्कालमें अपनेसे नीचे वर्णके कर्म करनेकी भी शास्त्रोंमें आज्ञा है। इस समय आपत्काल तो मानना ही पड़ेगा। इसके सिवा यह बात भी है कि वर्णव्यवस्थामें बहुत कुछ विशृङ्खलता आ गयी है। अतः साधकको चाहिये कि

यह वर्तमानमें जीविकाके लिये जो कर्म करता है, वह यदि हिंसायु या किसीका अहित करनेवाला न हो तो उसे न छोड़े, किंतु प्रः १ के उत्तरमें बताये हुए प्रकारसे उसे करता रहे ।

(१२) रोगकी अवस्थामें यदि स्नानादि न किया जाय त कोई हानि नहीं है । किंतु संध्यादि नित्य-कर्म मानसिक कर लेन चाहिये और भगवान्‌का भजन-स्मरण तो हर हालतमें हर प्रकार करते ही रहना चाहिये, इसमें कोई आपत्ति नहीं है । खयाल रखन चाहिये कि भगवान्‌का भजन-स्मरण कर्म नहीं है, यह तो भक्तिक अङ्ग है, प्रेम होनेसे आगे चलकर अपने-आप होने लगता है ।

(१३) स्नानादि करके पहले संध्यादि नित्य-कर्मसे निपट लेना चाहिये एवं उस कर्मको भी अपने इष्टकी आज्ञा मानकर, उन्हींकी प्रसन्नताका हेतु मानकर करना चाहिये; फिर अपने इष्टका भजन-स्मरण-ध्यान तो निरन्तर करना ही है ।

(१४) संध्याके लिये बताये हुए उत्तम कालमें यदि मालिकसे छुट्टी न मिल सके और जहाँ काम करते हैं वहाँ मानसिक करनेके लिये भी समय न मिल सके तो जब छुट्टी मिले, पहले संध्योपासना करके ही भोजन करना चाहिये ।

(१५) लिङ्ग नाम चिह्नका है; अतः इसमें कोई शङ्काकी बात नहीं । मिट्टीके ढेलेको, एक सुपारीको भी गणेश मानकर पूजा की जाती है तथा कुशा और अपामार्गके सप्तर्षि बनाकर उनकी पूजा की जाती है । इसी प्रकार दूसरे-दूसरे देवताओंके भी किसी न-किसी प्रकारके चिह्न बनाकर उनकी पूजा की जाती है एवं शङ्कर भगवान्‌की

भी मूर्ति और चित्र आदि पूजे जाते हैं। अतः यहाँ लिङ्गका अर्थ उपस्थ-इन्द्रिय नहीं मानना चाहिये।

(१६) भगवान्‌के भक्तको भगवान्‌की कृपाका भरोसा करके सदैव निर्भय रहना चाहिये। भगवद्भक्तका कभी किसी भी प्रकारसे अनिष्ट नहीं हो सकता—यह निश्चित सिद्धान्त है। गीता अ० ६ श्लोक ४० और अ० ९ श्लोक ३१ देखना चाहिये। शरीर-निर्वाहकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निर्वाह करते-करते भी तो वह चला ही जायगा। उसका वियोग तो निश्चित है, फिर चिन्ता किस बातकी? साधकको तो अपने प्रभुपर ही निर्भर रहना चाहिये। झूठ, कपट उसे क्यों करना चाहिये?

(१७) साधकके लिये घर, वन और पर्वत आदिमें कोई भेद नहीं है। उसे भगवान् जिस अवस्थामें और जिस जगह रखते हैं, वहीं वह प्रसन्न रहता है; क्योंकि उसके प्रियतम सभी जगह हैं, उसे तो उनकी आज्ञाका अनुसरण करना है और उन्हींकी प्रसन्नतामें प्रसन्न रहना है। फिर वह परिस्थिति बदलनेकी या बनी रहनेकी इच्छा ही क्यों करे?

रही लड़कीकी बात, सो उसे भी अपनी लड़की न मानकर भगवान्‌की लड़की समझना चाहिये और यथायोग्य उसका पालन-पोषण करते रहना चाहिये। उसके लिये प्रभुने जिस वरकी रचना की होगी उसके साथ सम्बन्ध होगा। इसमें आपको चिन्ता क्यों करनी चाहिये! इस बातको भगवान्‌पर ही छोड़ देना चाहिये। वे जैसा ठीक समझेंगे वैसा स्वयं करेंगे। वे सर्वसमर्थ हैं। लड़की

तो उनकी है, आप अपनी क्यों मानते हैं ? आपको तो चाहिये कि एकमात्र भगवान्‌को ही अपना मानें और निमित्तमात्र बनकर करवावें, वैसे ही चेष्टा करते रहें।

(१८) वर्तमान स्थूल शरीर छूट जानेके बाद जीवात्मा सूक्ष्म शरीरके सहित परलोक आदिमें गमन करता है। गीता अ० १५ श्लोक ७ और ८ में इसका स्पष्टीकरण है।

(१९) संजयने युद्धके दस रोज बाद ही कथा सुनाना आरम्भ किया था। यही बात महाभारतमें लिखी है। धृतराष्ट्र बीचमें युद्ध-समाचार साधारणतया सुन लिया करता होगा, पर विशेष जानकारीके लिये उसने संजयसे प्रश्न किया, यह बात माननेमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि 'क्या किया ?' इस प्रश्नका यह अभिप्राय नहीं है कि युद्ध किया या नहीं। इसका यह भाव है कि किस प्रकारके क्रमसे युद्ध हुआ। अतः कोई विरोध नहीं है।

(२०) अर्जुनने जो अभिमन्युकी मृत्युके समय शोक किया, वह लोकसंग्रहके लिये लीलाके रूपमें किया—ऐसा मानना चाहिये; जैसे कि भगवान् श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके लिये किया था।

(२१) भीष्म और द्रोण आदि राष्ट्रके मन्त्री थे, इसलिये उनको दुर्योधनकी ओरसे युद्ध करना पड़ा, पर उन्होंने कोई पक्षपात नहीं किया। धर्मानुसार अपने कर्त्तव्यका पालन किया। इसमें कोई दोषकी बात नहीं थी।

(२२) गजराजने किस नामसे पुकारा था—यह तो वहाँके प्रसङ्गमें देखना चाहिये। पर यह निश्चित बात है कि वह भगवान्‌को

जिस रूपमें देखना चाहता था, वे उसी रूपमें आये। भगवान् विष्णुका नाम भी राम है। विष्णुसहस्रनाम देखिये। अतः कोई विरोध नहीं है।

(२३) भक्त बहुत हुए हैं। उनकी जीवनी भक्तमालमें तथा 'कल्याण'में प्रकाशित भक्तगाथामें, भक्ताङ्कमें, भक्तचरिताङ्कमें भी देख सकते हैं एवं गीताप्रेससे प्रकाशित भक्तगाथाकी विभिन्न पुस्तकोंमें देख सकते हैं। भक्तबालक, भक्तनारी आदि अनेक पुस्तकें हैं। नामदेव, धन्ना, नरसी आदि अनेक बे-पढ़े भी भक्त हुए हैं।

---

[६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए, आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) निर्गुण, सगुण, निराकार और साकार सभी उस परब्रह्म परमात्माके ही स्वरूप हैं, अतः जिस साधकका जिस स्वरूपमें श्रद्धा-प्रेम हो, जिसकी उपासना वह बिना किसी कठिनाईके कर सकता हो, उसके लिये वही ठीक है। आपने निर्गुण स्वरूपकी उपासनाका प्रकार पूछा, सो यह उपासना ज्ञानमार्गके अनुसार की जाती है। निर्गुणकी उपासनाके लिये सब प्रकारकी भोगवासनाका त्याग कर कर्त्तापनके अभिमानसे शून्य होना आवश्यक है तथा शरीरमें जो मैं और मेरापन है इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये। फिर एकमात्र सच्चिदानन्द परब्रह्मके चिन्तनमें तल्लीन होकर सब प्रकारके चिन्तन

[१०]

सादर हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार माळूम हुए आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) आप सुबह एक बार संध्या करते हैं, सो माळूम हुआ, यदि सायंकाल भी किया करें तो और भी अच्छा है ।

गायत्री-मन्त्रका जप करते समय देवीका ध्यान न करके अपने इष्टदेव परमेश्वरका ध्यान करना चाहिये; क्योंकि गायत्रीमन्त्रमें परमेश्वरकी ही स्तुति-प्रार्थना और उनके ध्यानका वर्णन है । गायत्री देवी तो उस मन्त्रकी और छन्दकी अधिष्ठात्री देवता हैं, उसमें उनके स्वरूपका वर्णन नहीं है; अतः जप करते समय भगवान्‌का ध्यान और मन्त्रके अर्थका ज्ञान रहना परम आवश्यक है ।

(२) जब चित्त शुद्ध हो जाता है, उसके बाद बुरे विचार बंद हो जाते हैं । जबतक चित्तमें अशुद्धि रहती है, तबतक उनका समूल नाश नहीं होता; इसलिये वे समय-समयपर प्रकट होते रहते हैं । अतः साधकको चाहिये कि अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनाये । अर्थात् किसी भी प्राणीका अहित न तो क्रियाद्वारा करे, न मनसे ही चाहे । सबका हित हो वही काम करे और सबका भला हो वही भाव रखे । ऐसा करनेसे राग-द्वेषका नाश होनेपर चित्त शुद्ध हो जाता है ।

(३) सुबह-शाम घरमें बैठकर जप करें, उस समय यदि जपकी संख्या माळूम करनी हो तब तो मालापर जप करना चाहिये,

नहीं तो बिना माला और संख्याके भी कर सकते हैं। माला तुलसी या चन्दनकी हो तो अच्छी है। स्फटिकमणिकी और रुद्राक्षकी भी हो तो कोई बात नहीं है।

(४) सोते हुए रामनामका या षोडश मन्त्रका जप किया जा सकता है, कोई मनाही नहीं है। जो लोग कहते हैं कि सोते-सोते जप नहीं करना चाहिये, उनका कहना वैदिक-मन्त्र-जपके विषयमें है—ऐसा समझना चाहिये; क्योंकि उसमें विधि-विधानकी आवश्यकता है। भगवान्‌के नामका जप तो हर समय, हर अवस्थामें करना ही चाहिये। षोडश मन्त्रके जपके विषयमें तो कलिसंतरणोपनिषद्‌में स्पष्ट लिखा है कि शुद्ध हो या अशुद्ध, किसी भी अवस्थामें इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

---
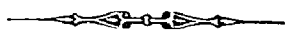
[११]

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। आपकी शङ्काओंका उत्तर क्रमसे नीचे लिखा जाता है—

आपने ईश्वरका अस्तित्व नहीं होनेका जो यह कारण बताया कि आजतक कोई उसतक पहुँच नहीं पाया, सो यह आप किस आधारपर लिख रहे हैं। उनतक पहुँचनेके लिये वास्तविक खोजमें लग जानेवालोंमेंसे बहुत-से लोग वहाँ पहुँचे हैं और आज भी पहुँच सकते हैं। अतः आपका यह तर्क सर्वथा निराधार है।

आपने लिखा कि लाखों-करोड़ों वर्षोंतक तपस्या करके भी पार नहीं पाया जा सकता। पर यदि कोई गलत रास्तेसे प्रयास करे

या किसी दूसरी वस्तुको पानेके लिये प्रयास करे और वह ईश्वरको न पा सके तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? वरं गीतामें तो भगवान्ने स्पष्ट कहा है कि 'साधक पराभक्तिके द्वारा मुझको, मैं जो हूँ और जैसा हूँ तत्त्वसे जान लेता है और फिर मुझमें ही प्रविष्ट हो जाता है (गीता अ० १८ श्लोक ५५)।' तथा वे पहले भी कह आये हैं कि 'पहले ज्ञानतपसे पवित्र हुए बहुत-से साधक मेरे भावको प्राप्त हो चुके हैं (गीता ४। १०)।' 'इस ज्ञानको जानकर सभी मुनिलोग परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं इत्यादि (गीता १४। १-२)।' अतः आपका यह कहना कि उसे कोई नहीं जान सका, निराधार सिद्ध होता है।

उसका आदि, अन्त और मध्य न जाननेकी जो बात कही गयी है, वह तो उस तत्त्वको असीम और अनन्त बतानेके लिये है। वेदोंने जो 'नेति नेति' कहा है, उसका भी यही भाव है कि वह जितना बताया गया उतना ही नहीं है, उससे अधिक भी है। अतः इससे उसका अभाव सिद्ध नहीं होता।

आप गम्भीरतासे विचार करें। वैज्ञानिकलोग जो प्रकृतिका अध्ययन करके नये-नये आविष्कार कर रहे हैं, क्या वे कह सकते हैं कि हमने प्रकृतिको पूर्णतया जान लिया है, अब कोई आविष्कार शेष नहीं रहा है? यदि ऐसा नहीं कह सकते तो क्या इतनेसे यह मान लेना चाहिये कि उसका अस्तित्व ही नहीं है?

बात तो यह है कि किसी भी असीम तत्त्वकी सीमा कोई निर्धारित नहीं कर सकता। यदि कोई कहे कि मैं उसे पूर्णतया

जान गया तो उस व्यक्तिका ऐसा कहना कहाँतक उचित होगा ? और इस कसौटीपर असीम तत्त्वके अस्तित्वको अस्वीकार करना भी कहाँतक युक्तिसङ्गत है, इसपर भी आप विचार करें ।

आपने लिखा कि जो है भी और नहीं भी है—ऐसी ईश्वरकी व्याख्या है, सो ऐसी व्याख्या कहाँ है ? यह कौन कह सकता है कि 'अमुक वस्तु नहीं है'; क्योंकि यह निश्चय करनेवाला भी तो कोई सर्वज्ञ ही होना चाहिये । 'अमुक वस्तु है या नहीं', ऐसा संदेह तो कोई भी कर सकता है पर 'नहीं है' यह कहनेका किसीका भी अधिकार नहीं है । फिर ईश्वरके बारेमें यह कहना कि 'वह नहीं है'—यह तो सर्वथा अनुचित है ।

ईश्वर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, साकार और निराकार भी है—यह कहना ठीक है और सर्वथा युक्तिसङ्गत है ।

आपने लिखा कि ईश्वर कुछ नहीं है, केवल कल्पना है; क्योंकि 'सब कुछ' का अर्थ 'कुछ नहीं' अर्थात् 'शून्य'—होता है, सो ऐसी बात नहीं है; क्योंकि ईश्वरको कल्पनासे अतीत बताया गया है । गीता अध्याय ८ श्लोक ९ में उसे 'अचिन्त्य रूप' कहा गया है ।

आगे चलकर आपने लिखा कि 'क्या जो चैतन्य-रूप दीखता है यही ईश्वर है ?' इसका उत्तर यह है कि जिस हलचल और शक्तिको लक्ष्य करके आपने चैतन्यकी व्याख्या की है इसका नाम चेतन नहीं है । शब्द तो आकाश-तत्त्वका गुण है, शक्ति बिजलीका

गुण है। वेग वायुका गुण है। ये सभी जड तत्त्व इनमें कोई भी चैतन्य नहीं है। चैतन्य तो वह तत्त्व जो इन सबको जानता है और इनका निर्माण भी करता है। वस्तु निर्माण की जाती है, किसीके द्वारा संचालित होती है, चैतन्य कैसे हो सकती है, यदि चेतनकी व्याख्या आप ठी ठीक समझ पाते तो सम्भव है आपको ईश्वरकी सत्ताका कुछ अनु होता। मनुष्यको ईश्वरका पता लगानेके पहले यह सोचना चाहि कि मैं जो 'ईश्वरकी सत्ता है या नहीं' इसका निश्चय करना चाहत हूँ, वह मैं कौन हूँ। जिसमें जाननेकी अभिलाषा है और जो अपने आपको तथा अपनेसे भिन्नको भी जानता है, प्रकाशित करता है वही चेतन हो सकता है। यह समझमें आ जानेपर आगेकी खोज आरम्भ होगी।

आपने कल-कारखानोंकी बात लिखी, कोयले और पानीके मिश्रणकी, उसकी शक्तिकी बातोंपर प्रकाश डाला, फिर बिजलीकी महिमाका वर्णन किया सो तो ठीक है, पर उनका आविष्कार करनेवालोंकी महिमाकी ओर आपका ध्यान नहीं गया। आप सोचिये, क्या वे कल-कारखाने बिना कर्ताके सहयोगके कुछ भी चमत्कार दिखा सकते हैं? यदि नहीं तो विशेषता उनको बनाने और चलानेवालेकी ही सिद्ध हुई।

आपने मानवशरीरको पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ बताया, यह तो ठीक है। शरीर तो सभी प्राणियोंके पाँच तत्त्वोंसे ही बने हैं। पर पाँच तत्त्वोंका समूह तो केवलमात्र यह दीखनेवाला स्थूल शरीर ही है। मन, बुद्धि और अहंकार—ये तीन तत्त्व इसके अंदर और हैं

तथा इन सबको जानने और प्रकाशित करनेवाला एक इनका अधिष्ठाता संचालक भी है। उसकी ओर भी आपका ध्यान आकर्षित होना चाहिये। उसके बिना इन सब तत्त्वोंका कोई भी चमत्कार हो ही नहीं सकता। वह कौन है?—इसपर विचार कीजिये।

आगे चलकर आपने सूर्य, चन्द्र, तारा आदिके विषयमें विज्ञानके आधारपर लिखा कि ये सब अपने-आप हो रहे हैं, परंतु आपने गहराईसे विचार नहीं किया। करते तो आप यह भी समझ सकते कि कोई भी जड पदार्थ बिना किसी संचालकके बहुत कालतक नियमित रूपसे नहीं चल सकता। जितना भी वैज्ञानिक आविष्कार है—जैसे अणु बम, रेडियो, बिजली और स्टीमसे होनेवाले काम, हवाई जहाज आदि, क्या कोई भी यन्त्र अपने-आप बन जाता है या उसका संचालन अपने-आप हो जाता है? यदि नहीं, तो फिर ये सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, तारा आदि यन्त्र अपने-आप कैसे बन गये और अपने-आप नियमित रूपमें कैसे संचालित होने लगे?

आपने लिखा कि 'जहाँ बुद्धि काम न दे, वहाँ ईश्वरको मान ले' सो ऐसी बात नहीं है। बुद्धि तो मनुष्यकी प्रकृतितक भी नहीं पहुँच पाती पर उस जड प्रकृतिको शास्त्रकारोंने ईश्वर नहीं मान लिया। उस प्रकृतिके आंशिक संचालक और प्रकाशकको भी ईश्वर नहीं माना; हाँ, ईश्वरका अंश तो माना है। अतः उसकी सत्तासे ही ईश्वरकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

अज्ञानका नाम ईश्वर नहीं है। जो ज्ञान और अज्ञान—दोनोंको जाननेवाला है, उसका नाम ईश्वर है।

मायाकी व्याख्या तो श्रीतुलसीदासजीने इस प्रकार की है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
(रामचरितमानस अरण्य० १४ । २

अतः जाननेमें न आनेवाली वस्तुका नाम माया नहीं बताय गया है।

आपने धर्मग्रन्थ और मत-मतान्तरोंपर आक्षेप करते हुए लिख कि 'किसकी मान्यता ठीक है, कोई कुछ कहते हैं और कोई कुछ कहते हैं। यदि ईश्वर होता तो सबका एक ही मत होता।' यह आपको गम्भीरतासे शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिये। यह त हरेक विचारशील व्यक्तिको मानना ही पड़ेगा कि जिस तत्त्वको को जानना चाहता है, उसके विषयमें पहले कुछ-न-कुछ मानना पड़त है और वह मान्यता वास्तविक सत्य न होनेपर भी सत्यका ज्ञान करानेमें हेतु होनेके कारण सत्य है। जैसे—अंग्रेजी लिपिमें 'K' इस आकारको 'क' माना; उसके आगे एक 'H' चिह्न और लगाकर उसे 'ख' मान लिया, इसी प्रकार सब वर्ण और संकेतोंके विषयमें समझ लें। उर्दूमें दूसरे ही संकेत हैं, बँगलामें दूसरे हैं और तामिल, तेलगू आदि दक्षिणी लिपियोंमें दूसरे हैं तथा उन-उन भाषा-भाषियोंके लिये अपनी अपनी भाषाके माने हुए चिह्न ही सत्य हैं; क्योंकि वे किसी भी जाननेमें आनेवाली वस्तुका ज्ञान करानेमें पूरे सहायक हैं। यदि ऐसा न माना जाता तो आज जगत्में कोई विद्वान् हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार उस परम सत्य तत्त्वको समझानेके लिये हरेक मता-वलम्बीने जो अपने-अपने संकेत बनाये हैं, वे साधकोंके लिये पथ-

प्रदर्शक होनेके नाते सभी सत्य हैं। यद्यपि जितने मत हैं, सभी मान्यता हैं, पर बिना मान्यताके हमारा कोई भी छोटे-से-छोटा काम भी नहीं चलता; फिर ईश्वरके लिये की जानेवाली मान्यता हमें क्यों अखरती है। क्या छोटी-से-छोटी वस्तुका ज्ञान करानेके लिये वैज्ञानिकोंको विभिन्न संकेतोंका आश्रय नहीं लेना पड़ता? क्या इस कारणको लेकर आविष्कृत वस्तुकी सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती? ऐसा तो कोई भी नहीं मान सकता।

बीजगणितमें तो सारा काम मान्यताके ही आधारपर चलता है तथा वैज्ञानिक आविष्कारोंमें भी मान्यता और बीजगणितका ही आश्रय लेना पड़ता है। यह सभी वैज्ञानिकोंका अनुभव है। परम सत्य ईश्वरतत्त्वको जानना कोई साधारण विज्ञान नहीं है। अतः उसके लिये तरह-तरहकी मान्यता भी अनिवार्य है; क्योंकि साधकोंकी रुचि, योग्यता, बुद्धि और श्रद्धा भिन्न-भिन्न होनेसे भेद होना अनिवार्य है। अतः मत-मतान्तरोंकी अनेकतासे एक ईश्वरका होना असिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये आपका यह लिखना कि ईश्वर नामकी कोई वस्तु नहीं है, किसी प्रकार भी युक्तिसङ्गत नहीं, केवल प्रमादमात्र है।

'ईश्वरको न माननेसे मनुष्य वाममार्गी, अत्याचारी, व्यभिचारी हो जायगा, समाजभ्रष्ट हो जायगा, इसलिये ईश्वरको मानना चाहिये,' ऐसी बात नहीं है। जो वस्तु नहीं है उसे मानना तो स्वयं अत्याचार है, उससे अत्याचार आदिका निवारण कैसे होगा? अतः उपर्युक्त दुर्गुणोंकी नाशक भी सच्ची मान्यता ही हो सकती है और वही बात शास्त्रकारोंने बतायी है, मिथ्या कल्पना नहीं है।

इसी प्रकार धर्म, पुनर्जन्म, मुक्ति आदि कोई भी बात कल्पि या मिथ्या नहीं है। झूठसे कभी किसीका कोई लाभ नहीं होता, यह निश्चित निर्णय है। झूठ तो अधर्म है ही, उसे धर्म कैसे कहा ज सकता है?

हमारा धर्मशास्त्र और आध्यात्मिक शास्त्र ढकोसल नहीं है, वास्तविक हानि-लाभको ही समझानेवाला है; अत वही एकमात्र सुधारका रास्ता है। आज उसके नामपर दुनियामें दम्भ बढ़ गया है, इसी कारण अनुभवसे रहित नवशिक्षित पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावमें आये हुए पुरुषोंको धर्म और ईश्वरपर आक्षेप करनेका मौका मिल गया है।

आगे चलकर आपने पूजा-पाठपर आक्षेप किया है, वह भी विचारकी कमीका ही द्योतक है। आपको गहराईसे विचार करना चाहिये कि क्या ऐसा कोई भी मजदूर या परिश्रम करनेवाला मनुष्य है जिसको चौबीसों घंटे फुरसत ही नहीं है, उसका सब-का-सब समय शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक वस्तुओंके उपार्जनमें ही लग जाता है। विचार करनेपर ऐसा एक भी मनुष्य नहीं मिलेगा। उसे भगवान्‌का भजन-स्मरण और सत्सङ्ग-स्वाध्यायके लिये समय चाहे न मिले पर खेलने, मन बहलाने, सिनेमा देखने और अन्यान्य व्यर्थ कामोंके लिये तो समय मिलता ही है। इसके सिवा हमारे धर्म-शास्त्रोंमें तो यह भी बताया गया है कि जिस मनुष्यका जो कर्तव्यकर्म है उसीको ठीक-ठीक उचित रीतिसे करके उसके द्वारा ही वह ईश्वरकी पूजा कर सकता है। अतः इसमें न तो किसी प्रकारका खर्च है न

किसी वस्तुकी जरूरत है, न कोई समयकी ही आवश्यकता है। ऐसी पूजा तो हरेक मनुष्य बिना किसी कठिनाईके कर सकता है। आप गीता-तत्त्वविवेचनी अध्याय १८ श्लोक ४५, ४६ और उसकी टीकाको देखिये।

अतः आपका यह आक्षेप कि 'जो धनी-मानी, सेठ-साहूकार निठल्ले बैठे रहते हैं, उन्हें पूजा-पाटसे मन बहलाना चाहिये'—सर्वथा युक्तिविरुद्ध है; क्योंकि कोई भी मनुष्य आपको ऐसा नहीं मिलेगा जिसको मन बहलाते हुए शान्ति मिल गयी हो। शान्ति तो मनको भोगकामनासे हटाकर भगवान्में लगानेसे ही मिलेगी, जो कि सहजमें ही किया जा सकता है।

आप गीताका नित्य पाठ करते हैं, कल्याणका मनन करते हैं, गायत्रीजप करते हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। परंतु गीताके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा करें।

[१२]

आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) यह तो आपको मान ही लेना चाहिये कि भगवान् एक ही है। उसके चाहे जितने स्वरूप हों, वह चाहे जिस वेषमें रहे, पर है एक और वही साधकका इष्ट होना चाहिये। इस परिस्थितिमें

यदि आप अपने इष्टको विष्णुरूपमें बुलाना चाहते हैं और श्रीकृष्णरूपमें आपके सामने प्रकट होता है तो समझना चाहि कि भगवान् मेरी इच्छाके अनुसार न करके अपनी इच्छाके अनुस कर रहे हैं, यह उनकी कितनी कृपा है। इसलिये उसका अधिक आदर करना चाहिये। मेरा हित किसमें है इसका मुझे क पता? प्रभु सब कुछ जानते हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं है। अत वे जो कुछ करते हैं, वही ठीक है। ऐसा मानकर आपको भगवान्‌के प्रेममें विह्वल हो जाना चाहिये और जो अपने-आप सामने आये उन श्रीकृष्णकी उस स्वरूप-माधुरीका पान करते रहना चाहिये। उस रूपमें भी तो आपके इष्ट ही आते हैं, फिर आपके इष्टके ध्यानमें बाधा कैसी?

(२) प्रकृति स्वयं गतिशील है, यह तो माना जा सकता है; परंतु वह न तो अपनेको जानती है और न अपनेसे भिन्नको ही जान सकती है। फिर वह कौन है जो उस प्रकृतिका नियमानुसार संचालन करता है, जीवोंको उनके कर्मानुसार फलभोग कराता है और कर्मबन्धनसे मुक्त भी करता है? बिना चेतनके सहयोगके प्रकृति कोई भी ऐसा काम नहीं कर सकती, जो नियमानुसार चलता रहे और उसमें कोई व्यवधान न पड़े। अतः यह सिद्ध होता है कि उसका एक संचालक सर्वशक्तिमान् अवश्य है। वही ईश्वर है।

आपने पूछा कि यदि प्रत्येक वस्तुको कोई बनानेवाला है तो भगवान्‌को बनानेवाला कौन है? इसका यह उत्तर है कि जगत्‌के बनानेवालेका बनानेवाला कोई नहीं होता, वह बनानेवाला

तो स्वतःसिद्ध होता है; क्योंकि वह जड वस्तु नहीं है, स्वयंप्रकाश
सर्वशक्तिमान् है, इसीलिये वह भगवान् है ।

जिस तत्त्वको हम जानना चाहते हैं, उसके जानकारोंकी बात-
पर विश्वास करके पहले मानते हैं तभी उसे जानते हैं, उसी प्रकार
ईश्वरतत्त्वको समझनेके लिये भी पहले उसे जाननेवाले महापुरुषों और
उसे जाननेकी प्रक्रियापर विश्वास करना उचित है । बिना विश्वासके
मनुष्यका छोटे-से-छोटा कोई भी काम नहीं चलता, इसलिये भी
विश्वास करना ही जाननेका उपाय है; यह बात सिद्ध होती है ।

भगवान् है—यह विश्वास मनुष्यको इसलिये भी करना
चाहिये कि उसको स्वयं अपने होनेका प्रत्यक्ष बोध है । कोई भी
प्राणी यह नहीं समझता कि मैं नहीं हूँ । अतः उसे विचार करना
चाहिये कि मैं कौन हूँ । विचार करनेपर पता लगेगा कि शरीर तो
मैं नहीं हो सकता; क्योंकि यह बदलता रहता है और मैं नहीं
बदलता; मेरा शरीर आजके दस वर्ष पहले जो था, वह अब नहीं
रहा; पर मैं वही हूँ जो उस समय था; क्योंकि उस समयकी और
उससे पहलेकी घटनाएँ मुझे मालूम हैं ।

फिर विचार करना चाहिये कि मैं शरीर नहीं तो क्या मैं
मन और बुद्धि हूँ । विचार करनेपर पता चलेगा कि मैं मन-बुद्धि
भी नहीं हो सकता; क्योंकि उनको मैं जानता हूँ और जाननेमें
आनेवाली वस्तुसे जाननेवाला सदैव भिन्न हुआ करता है ।

फिर विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ, किसके आश्रित
हूँ और मेरा आधार क्या है ? विचार करनेपर पता लगेगा कि

जो मेरे ज्ञानका विषय है, जिसको मैं जान सकता हूँ, वह न मेरा आधार हो सकता है और न वह मैं ही हो सकता हूँ; क्यों जाननेमें आनेवाली सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील और नाशवान् हैं। मैं सदा एक रस और अविनाशी हूँ। अतः मेरा आधार, संचाल और प्रेरक भी कोई चेतन अविनाशी ही हो सकता है और व भगवान् है। इस प्रकार अपनी सत्ताको तथा परिमित सामर्थ्य अ ज्ञानको देखकर किसी अपरिमित ज्ञान-बल-वीर्ययुक्त नित्य अविनाश चेतन शक्तिका होना स्वतः समझमें आना चाहिये।

[१३]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। आपने लिखा कि मैं जीवात्मा मायामें लिपटनेसे अपने स्वरूपको भूल गया हूँ, सो यह तो आपकी सुनी हुई बात है। यदि इस बातको आप समझ लेते या मान लेते तो तत्काल ही मायाके बन्धनसे छूट जाते।

गृहस्थका निर्वाह तो आपके न रहनेपर भी होता ही रहेगा। आपकी जो यह मान्यता है कि मैं गृहस्थका निर्वाह करता हूँ, यह तो केवल अभिमानमात्र है।

जीव चेतन है, सर्वव्यापी भगवान्‌का अंश है। इसमें तो कोई संदेह नहीं है। पर जीवको भगवान्‌से अलग करनेवाला केवल स्थूल शरीर ही नहीं है, इसके सिवा सूक्ष्म और कारण शरीर भी हैं।

अतः जबतक तीनों शरीरोंसे जीवका सम्बन्ध नहीं छूटता, तबतक वह जन्म-मृत्युसे नहीं छूटता। उसका एक स्थूल शरीरको छोड़कर दूसरे स्थूल शरीरमें जाना सूक्ष्म और कारण-शरीरको लेकर होता है। इसका खुलासा गीतातत्त्वविवेचनी टीका अ० १५ श्लोक ७, ८, ९ में देखना चाहिये।

माता-पिता न हों तो सबके माता-पिता परमेश्वर तो हैं ही, उनको प्रणाम करना चाहिये तथा साधु, ब्राह्मण और अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये एवं सबके हृदयमें स्थित भगवान्‌को प्रणाम करना चाहिये।

जबतक आप झूठ बोलते हैं, तबतक एक बात बोलनेसे ग्राहक न पटे इसमें क्या आश्चर्य है; क्योंकि उनको कैसे खातिर हो कि आप सच बोलते हैं। यदि स्वार्थको छोड़कर आप सत्यके पालनपर दृढ़ हो जायँ तो फिर ग्राहक आपको ढूँढ़ते फिर सकते हैं।

---

[१४]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। उत्तर इस प्रकार है—

गोपियाँ सभी एक श्रेणीकी नहीं थीं। उनमें बहुत-सी गोपियें ऐसी थीं, जिनमें पूर्णतया निष्कामता आ गयी थी। निष्काम साधक होता है इसीलिये उसके साधनको निष्काम कहा जाता है

आपका यह कहना ठीक है कि जबतक मनुष्यका तीनों शरीरोंमेंसे किसी भी शरीरमें अहंभाव रहता है या ममता रहती है, तबतक वह पूर्ण निष्काम नहीं हो सकता। पर इसका अर्थ यह नहीं कि शरीरमें प्राण रहते कोई साधक कामनारहित जीवन प्राप्त नहीं कर सकता।

आपकी यह मान्यता कि 'कर्ता जो कुछ भी जिस रूपमें करता है वह अपने सुखके लिये ही करता है'—आपके लिये ठीक हो सकती है, पर सबकी मान्यता एक-सी नहीं हो सकती; क्योंकि रुचि, विश्वास और योग्यताके भेदसे मान्यता भिन्न-भिन्न होती है। सिद्धान्तका वर्णन कोई कर नहीं सकता; क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है।

आपने लिखा कि 'स्वेच्छासे जो कुछ किया जाता है वह अपने सुखके लिये ही किया जाता है।' इसपर यह विचार करना चाहिये कि स्वेच्छा और कामनामें भेद क्या है। यदि कोई भेद नहीं है तो आपका कहना इस अंशमें ठीक ही है। पर यदि भेद माना जाय तो सुखकी कामनाके बिना भी कर्म किया जा सकता है।

महाराज रन्तिदेवके विषयमें आपने जो अपनी समझ व्यक्त की, उस विषयमें मैं क्या लिखूँ। उनका क्या भाव था, वास्तवमें दूसरा नहीं बता सकता। ऊपरके व्यवहारसे भावका पूर्णतया पता नहीं चलता। पर यह अवश्य माना जाता है कि जिसका सब प्राणियोंमें आत्मभाव हो गया है, जो सब प्राणियोंके हितमें रत है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है।

आपने जो इस विषयकी व्याख्या की है वह भौतिक विज्ञान-की दृष्टिसे ठीक है, पर आध्यात्मिक दृष्टिसे दूसरी बात है।

आपने जो यह लिखा कि 'जीव अपनेको जबतक पृथक् मानता है इत्यादि' इनपर विचार करना चाहिये। जीव कौन है? इसका पृथक् मानना क्या है और न मानना क्या है, वह कबतक पृथक् मानता रहता है? शरीरमें प्राण रहते हुए यह मान्यता नष्ट हो सकती है या नहीं? इसपर अपना विचार व्यक्त करें, तब उत्तर दिया जा सकता है।

आपने पूछा—'प्रेम किससे किया जाता है, अपनेसे छोटेसे या बड़ेसे?' इसका उत्तर तो यह है कि प्रेम अपनेसे छोटेके साथ भी किया जाता है और बड़ेके साथ भी।

आपने अपनी मान्यता व्यक्त करते हुए जो यह लिखा कि 'कोई भी प्रेमी बिना किसी गुणके या महानताके किसीसे भी प्रेम नहीं करता' सो यह आप मान सकते हैं। पर यह नहीं कहा जा सकता कि यही मानना ठीक है, दूसरी सब मान्यताएँ गलत हैं; क्योंकि प्रेमतत्त्व गहन है।

आपने लिखा कि 'भगवान् तो ऐसा कर सकते हैं, किंतु जीव नहीं कर सकता; जबतक जीवकोटि है तबतक ऐसा हो नहीं सकता' सो जीवकोटिसे आपकी क्या परिभाषा है? यह तो आप ही जानें। पर प्रेमीलोग तो सबसे प्रेम करते हैं; यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। ऐसा न होता तो संतलोग संसारी मनुष्योंके साथ क्यों प्रेम करते?

आपने लिखा कि 'गोपियोंने जो भगवान् श्रीकृष्णके सा प्रेम किया, वह प्रेमकी पराकष्ठा कही जाती है; किंतु मानी नह जा सकती।' इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि आप चा न मानें, जिन्होंने कहा है उन्होंने तो मानकर ही कहा है।

आपने पूछा कि 'उनका प्रेम भगवान् श्रीकृष्णके साथ थ या उस परम तत्त्वके साथ, जिससे भिन्न कोई दूसरा तत्त्व ही नहीं है?' इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णसे भिन्न कोई परम तत्त्व भी है, यह उनकी मान्यता ही नहीं थी।

आपने लिखा कि 'परम तत्त्वमें भेद नहीं है, सो परम तत्त्व क्या है, उसमें किस प्रकार भेद है, किस प्रकार भेद नहीं है, यह अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार आचार्यलोग कहते हैं। पर फिर सभी यह कहते हैं कि वह वाणी, मन और बुद्धिका विषय नहीं है।

आपने पूछा कि 'अभेदमें कर्ता नहीं, फिर प्रेमकी कोटि क्या?' इसका उत्तर बतलानेकी जिम्मेवारी तो आपपर ही आ जाती है; क्योंकि आप पहले स्वीकार कर चुके हैं कि 'अपनेसे छोटेके साथ प्रेम भगवान् तो कर सकते हैं', तो क्या भगवान् अपनेको परमतत्त्वसे भिन्न मानते हैं, जिसकी दृष्टिमें छोटे-बड़ेका भेद आपकी मान्यताके अनुसार सिद्ध होता है।

आपने लिखा कि 'यदि भेद है तो कितना ही उच्च प्रेम या प्रेमी क्यों न हो, प्रेमास्पदसे अपनेको हेय मानकर कुछ कामना अवश्य करेगा।' आपका यह लिखना प्रेमके तत्त्वको बिना समझे ही हो सकता है।

आपने लिखा कि 'जो यह मानते हैं कि प्रेमी अपने लिये ;छ नहीं करता, जो कुछ करता या चाहता है प्रेमास्पदके लिये ी करता है, मैं इसको गलत मानता हूँ ।' सो आप चाहे जिस ान्यताको गलत मान सकते हैं, आपको कौन मना करता है । रंतु प्रेमियोंका कहना है कि जो अपने सुखके लिये किया जाता ै, वह प्रेम ही नहीं है; वह तो प्रत्यक्ष ही काम है जिसका परिणाम दुःख ही है । असली प्रेममें अपने सुखभोगकी गन्ध भी नहीं रहती । उसको जो प्रेमास्पदके सुखमें सुख होना कहा जाता है वह तो प्रेम-का ही स्वरूप बतलाना है, वह सुखभोग या सुखभोगकी कामना नहीं है । प्रेम स्वयं विशुद्ध रसमय है, रस ही प्रेमका स्वरूप है और वह असीम तथा अनन्त है ।

आपने लिखा कि 'प्रेमास्पद पूर्ण है' सो ठीक है । पर उस पूर्णमें भी प्रेमकी भूख सदैव रहती है; क्योंकि प्रेम उसका स्वभाव है और उसकी पूर्ति नहीं है, क्योंकि वह अनन्त है ।

आपने लिखा कि 'प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों जबतक सम नहीं, तबतक प्रेममें पूर्णता नहीं' सो आप ही विचार करें कि यदि प्रेमास्पद स्वयं प्रेमी बन जाय और प्रेमी उसके लिये प्रेमास्पद हो जाय तो दोनों सम हो गये या नहीं ?

आपका यह कहना कि 'प्रेमी प्रेमास्पद और प्रेमास्पद प्रेमी बन जाय, यह केवल कथन है' सो ऐसी बात नहीं है । प्रेम ऐसा ही विचित्र तत्त्व है । उसमें आपकी युक्ति काम नहीं देती; क्योंकि वहाँतक बुद्धिकी पहुँच नहीं है ।

भक्तलोगोंका क्या कहना है और वह किस उद्देश्यसे है, य तो भक्तलोग ही जानें; पर मैंने तो यह सुना है कि प्रेमका द्वै द्वैत नहीं है और अद्वैत अद्वैत नहीं है; क्योंकि साधारण दृष्टि जैसा द्वैत और अद्वैत समझा जाता है, प्रेम-तत्त्व उस समझ औ कल्पनासे अतीत है। उसे कोई भी तबतक नहीं समझ सकत जबतक वह स्वयं प्रेमको प्राप्त नहीं कर लेता।

आपने लिखा कि 'भगवान्‌के भक्त भगवान्‌के हाथके य बनकर उनके आदेशानुसार समस्त कर्म होना मानते हैं' त आगे पैरा पूरा होनेतक इसकी व्याख्या भी लिखी सो इसमें को मतभेद नहीं है। यह मान्यता भी परम श्रेयस्कर है।

श्रीप्रह्लादजी क्या चाहते थे, क्या नहीं चाहते थे, य समझना कठिन है। उनके चरित्रको सुनकर सुननेवाला अप समझके अनुसार कल्पना कर लेता है। भक्तमें स्वार्थकी गन्धत नहीं रहती, उसकी दृष्टिमें एकमात्र प्रेम ही प्रेम रहता है, व कल्पना कैसी? भक्तका चरित्र तो लोकशिक्षाके लिये एक लीला है उसमें जो कुछ खेल खेला जाता है, वह भगवान्‌की दी इ शक्तिसे उन्हींकी प्रेरणासे और उन्हींकी प्रसन्नताके लिये हो है। अतः भक्तकी क्रियाको न तो स्वार्थ कहना चहिये और कल्पना ही।

साधनकी पराकाष्ठा क्या है—यह निश्चितरूपसे तो इसलि नहीं कहा जा सकता कि सब साधकोंके लिये उसका स्वरु एक-सा नहीं है। पर गीतामें भगवान्‌ने अपने प्रिय भक्तोंके लक्ष

बारहवें अध्यायके १३ वें से १९ श्लोकतक बतलाये हैं; उन पराकाष्ठाकी बातें आ जाती हैं ।

शरणागतकी पूर्णता अपनापन खोनेमें है या यन्त्रवत् क करनेमें—यह तो शरणागत भक्त ही जानें । पर पहले यह समझ की जरूरत है कि यन्त्रका कोई स्वतन्त्र अतित्व रहता है क्या इसपर विचार करनेपर सम्भव है, आपके प्रश्नका उत्तर हो जाय

श्रीमान् राष्ट्रपतिजीने हिंदूकोडपर हस्ताक्षर किस भा किये इसका निर्णय देनेका मैं अपना अधिकार नहीं मानता ।

'सनातन हिंदू-धर्म कठोरतासे कुचला जा रहा है, नष्ट करनेके लिये विभिन्न कानून बनाये जा रहे हैं' यह ठ है । पर ऐसा क्यों हो रहा है—इसपर यदि गम्भीरतासे वि किया जाय तो मानना पड़ेगा कि अपनेको हिंदू कहने भाई धर्म और ईश्वरकी ओटमें कम अन्याय नहीं कर रहे । अपनेको साधु, महात्मा, प्रचारक, साधक, भक्त, महन्त, उपदेशक तथा सदाचारी मानने और मनवानेवाले गृहत्यागी गृहस्थ पुरुषोंकी क्या दशा है ? क्या इनमें ऐसे लोग नहीं हैं, धर्मकी ओटमें अधर्म कर रहे हैं ? क्या लोग ईश्वरकी उ स्वयं अपनी पूजा-प्रतिष्ठा नहीं करवा रहे हैं ? क्या कोई व्या धर्मादेके नामपर अर्थसंग्रह नहीं कर रहे हैं ? कोई भी सरल व्यक्ति उपर्युक्त बातोंको अस्वीकार नहीं कर सकता । अतः तो नहीं कहा जा सकता कि धर्मका विरोध ईश्वर-इच्छाके ही हो रहा है, पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें इ

विरोध नहीं करना चाहिये, हमें इसका विरोध पूरी शक्ति लगाकर करना चाहिये। वह यदि कर्तव्य मानकर किया जाय तो भी अच्छा है और भगवान्‌का आदेश मानकर किया जाय तो भी अच्छा है। उसमें सफलता मिले या विफलता, परिणाममें हर्ष-शोक न होना और करते समय राग-द्वेषसे रहित होकर करना—यही निष्फलताकी कसौटी है।

[१५]

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। संसार-सागरके थपेड़ोंसे व्याकुल होकर एवं संसारसे निराश होकर भगवान्‌की शरणमें जाना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। साधकको समझना चाहिये कि भगवान्‌की मुझपर परम कृपा है जो मेरे मनमें उनके आश्रित होनेका भाव प्रकट हुआ।

संसारमें ऐसा व्यक्ति दृष्टिगोचर न हो जो उचित परामर्श दे सके, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि संसारमें रचे-पचे व्यक्ति प्रायः स्वार्थपरायण हुआ करते हैं, पर साधकको चाहिये, कि उनके दोषोंपर दृष्टिपात न करे, अपने विवेकका उपयोग अपने दोषोंको देखने और मिटानेमें करे। मनसे किसीका बुरा न चाहे, अपने साथियोंके हित और प्रसन्नताका तथा उनके प्रति अपने कर्तव्यपालनका विशेष ध्यान रक्खे।

आपका हृदय भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे रञ्जित है, यह भगवान्‌की विशेष कृपा है। उनके दर्शनोंकी तीव्र लालसा होना,

यही तो मनुष्यका सर्वोत्तम लक्ष्य है। इस लालसाको पूर्ण करना सर्वशक्तिमान् परम प्रेमी प्रभुके हाथमें है। अतः उनके आश्रित भक्तको कभी निराश नहीं होना चाहिये, निराशा तो साधनमें विघ्न है, भगवान्‌पर दृढ़ भरोसा रखना चाहिये।

भगवान्‌का दिव्य वृन्दावनधाम और सेवाकुञ्ज सर्वत्र है, उनके प्रेमी भक्तका उसीमें नित्य निवास रहता है, उसकी दृष्टिमें इस पाञ्चभौतिक जगत्‌का अस्तित्व ही नहीं रहता। अतः आपको इसके लिये निराश नहीं होना चाहिये।

आप पाञ्चभौतिक शरीरको अपना स्वरूप मान रही हैं, यह आपकी भूल है। परंतु वास्तवमें यह आपका स्वरूप नहीं है, यह तो हाड़-मांस और मल-मूत्रका थैला है। आपका स्वरूप तो उस परम प्रेमके समुद्र भगवान् श्रीकृष्णका ही चिन्मय अंश है। अतः उचित है कि आप जिस शरीरको और उसके सम्बन्धी माता, पिता, भाई, नाना, मामा आदिको अपना मान रही हैं, उन सबसे ममता तोड़कर एकमात्र प्रभुको ही अपना सब कुछ समझें। वे प्रभु जब आपको अपने दिव्य वृन्दावनधामकी सेवाकुञ्जमें निवास कराना चाहेंगे, तब कोई भी रोक नहीं सकेगा। वे बड़े नटखट हैं। वे देखते हैं साधकके भावको। जब साधक सब प्रकारके सांसारिक भोगोंकी इच्छाका त्याग करके एकमात्र उन्हींके प्रेममें निमग्न हो जाता है, उनसे मिलनेके लिये सर्वभावसे व्याकुल हो उठता है, तब वे तत्काल ही उसे अपने वृन्दावनधाममें प्रवेश कर लेते हैं। अतः निराशाके लिये कोई स्थान नहीं है।

आपके······जो आपकी भगवद्भक्तिका विरोध करते हैं, वृन्दावनधामको नरक और भगवान्‌के भक्तोंको ढोंगी बताते हैं एवं सेवाकुञ्जमें दर्शन होने आदि बातोंको झूठा प्रचार बताते हैं, इसे सुनकर आपको न तो आश्चर्य करना चाहिये, न दुःख करना चाहिये और न उन कहनेवालोंको बुरा ही समझना चाहिये। जो मनुष्य जिसके महत्त्वसे अनभिज्ञ होता है, वह उसकी निन्दा किया ही करता है, यह कोई अस्वाभाविक नहीं है। वे तो भगवान्‌की विशेष कृपाके पात्र हैं; क्योंकि हमारे प्रभुका नाम पतितपावन और दीनबन्धु है। जब वे हमारे-जैसे अधमोंको अपनानेके लिये अपना प्रेम प्रदान करते हैं, तब दूसरोंको क्यों नहीं करेंगे। ऐसा भाव करके सबके साथ प्रेमका व्यवहार करते रहना चाहिये और उनके कहनेका किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं मानना चाहिये।

आपने लिखा कि एक क्षणके लिये भी सत्संग नहीं मिलता, सो भगवान्‌की स्मृतिसे बढ़कर दूसरा सत्संग कौन-सा है। भगवान्‌में प्रेम होना ही सत्संगका परम सार है। अतः श्रेष्ठ पुरुषोंका सङ्ग न मिले तो भी उसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान् आवश्यक समझेंगे तो वैसे सत्संगकी व्यवस्था स्वयं करेंगे। साधकको तो सर्वथा उनपर निर्भर होकर निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, किसीपर कृपा करनेकी मुझमें सामर्थ्य ही कहाँ है, कृपा तो उस सर्वशक्तिमान् कृपानिधान प्रभुकी

सबपर है ही, उसी कृपाका हरेक घटनामें दर्शन करते रहना चाहिये।

आपने घरपर ही भगवान्‌का दर्शन होनेका उपाय पूछा, सो उनके दर्शनकी उत्कट इच्छा ही सर्वोत्तम और अमोघ उपाय है। अतः उसी उत्कट इच्छाको इतना तीव्रातितीव्र बढ़ाना चाहिये कि फिर बिना दर्शनके क्षणभर भी चैन न पड़े।

जो यह कहते हैं कि कलियुगमें भगवान्‌का दर्शन नहीं होता, वे भोले भाई हैं। उनको भगवान्‌की महिमाका अनुभव नहीं हुआ है। अतः उनकी बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये। सच तो यह है कि भगवान् जितनी सुगमतासे कलियुगमें दर्शन देते हैं उतनी सुगमतासे किसी भी युगमें नहीं देते, क्योंकि वे पतित-पावन हैं।

आपके लिये मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा कराना कोई विशेष आवश्यक नहीं है। मीराँने कब प्राणप्रतिष्ठा करायी थी? पर उनकी तो अपने प्रभुसे बराबर बातचीत चलती थी। अब आप ही विचार करें कि शास्त्रीय प्राण-प्रतिष्ठा आवश्यक है या भावमयी प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक है। भावमयी प्राणप्रतिष्ठाको कोई नहीं रोक सकता।

आपने जपकी संख्याके विषयमें पूछा, सो जिन प्रेमियोंका जीवन ही भजन-स्मरण है, उनके मनमें यह सवाल ही क्यों उठना चाहिये कि कितनी संख्या पूरी होनेपर मुक्ति होती है; क्योंकि संसारसे तो उनकी एक प्रकारकी मुक्ति उसी समय हो जाती है

जब वे सबसे नाता तोड़कर एकमात्र प्रभुको ही अपना सर्व मान लेते हैं और भगवान्‌के प्रेम-बन्धनसे उनको मुक्त हो नहीं है । अतः प्रेमी भक्तके मनमें तो यह सवाल ही नह उठना चाहिये ।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र बहुत अच्छा है ध्रुवजीने इसी मन्त्रका जप किया था ।

जपकी संख्याका हिसाब तो उस साधकके लिये आवश्यक है, जिसको निश्चित संख्यातक जप करना है और बाकी बचे हुए समयमें दूसरा काम करना है । जिस साधकको निरन्तर जप ही करना हो और जिसका भजन-स्मरण ही जीवन बन गया हो उसके लिये संख्याका हिसाब रखनेकी आवश्यकता नहीं है । जप चाहे जैसे भी किया जाय वह निष्फल नहीं हो सकता ।

जप करते समय माला उसी समय हाथसे छूटती है, जब मन दूसरी ओर चला जाता है या तन्द्रा (आलस्य) आ जाती है । माला छूट जाय तो जप फिर आरम्भसे ही करना चाहिये ।

भगवद्गीताके माहात्म्यमें जो एक श्लोकसे मुक्ति बतायी है, उसका सम्बन्ध श्रद्धासे है । यदि मनुष्य एक श्लोकपर श्रद्धा करके उसके अनुसार अपना जीवन बना ले तो केवल मुक्ति ही नहीं, भगवान् स्वयं भी मिल जाते हैं । भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
(गीता ८ । १४)

'हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

अतः यही समझना चाहिये कि जिनको गीताकी महिमापर श्रद्धा नहीं है, जो उसकी महिमाको सुनकर भी मानते नहीं, उनको वह लाभ नहीं मिलता जो मिलना चाहिये।

जप करते समय उदासी या आलस्यका आना श्रद्धा-प्रेमकी कमीका द्योतक है।

सिद्ध सखी-स्वरूपकी प्राप्ति प्रेमकी धातुसे बने हुए प्रेममय दिव्य शरीरको प्राप्त होनेको कहते हैं। उसीसे भगवान्के लीलाधाम दिव्य वृन्दावनमें प्रवेश होता है। अतः कल्याणमें जो बात लिखी है, वह ठीक ही होगी। सिद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेका साधन एक-मात्र भगवान्की कृपाका आश्रय और उनका अनन्य प्रेम ही है। उसे प्राप्त करनेका अधिकार हरेक मनुष्यका है फिर आपका क्यों नहीं है ?

---

[१६]

आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। कार्डका उत्तर न दिया जाय और लिफाफेका दिया जाय, ऐसी बात नहीं है; बल्कि कार्डका उत्तर देनेमें तो अपेक्षाकृत सुविधा रहती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) प्रकृतिका दूसरा नाम अव्यक्त और प्रधान भी है इसके कार्यरूप तीन गुण बताये गये हैं—सत्त्वगुण, रजोगु और तमोगुण। इन तीनोंके मिश्रणसे अनेक भेद हो जाते हैं सत्त्वगुणमें प्रकाश, ज्ञान और सुखकी प्रधानता है। रजोगुण आसक्ति और हलचलकी प्रधानता है। तमोगुणमें अज्ञान, प्रमा और मोहकी प्रधानता रहती है।

(२) परमात्माको पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परब्रह्म, सर्वात्म आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है। वे मायाप्रेरक सबके रचयिता, सर्वशक्तिमान्, समस्त दिव्य कल्याणमय गुणोंके समुद्र होते हुए ही सबसे अलग, अलिप्त और अकर्ता तथा अभोक्ता हैं एवं गुणोंसे अतीत भी हैं। यही उनकी विशेषता है।

(३) परमात्मा ज्ञानस्वरूप, प्रकृतिके प्रेरक और सर्वज्ञ हैं। प्रकृति जड और परमात्माके नचानेसे नाचनेवाली है। यही भिन्नता है। पर है उस परमात्माकी ही शक्ति, इसलिये अभिन्न भी है; क्योंकि शक्तिमान्‌से भिन्न शक्तिकी कोई सत्ता नहीं होती।

(४) जीवात्मा परमात्माका ही अंश है, इसको परमात्माकी परा प्रकृतिके नामसे (गीता ७। ५) और स्वभावके नामसे (गीता ८। ३) भी कहा है। यह जबतक जड प्रकृतिमें स्थित रहता है (गीता १३। २१), तबतक सुख-दुःख भोगता रहता है और विभिन्न योनियोंमें जन्मता रहता है। जब प्रकृतिका सङ्ग छोड़कर मुक्त हो जाता है, तब अपने परम कारण—परम आश्रय परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है।

(५) सभी प्राणी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे उत्पन्न हैं (गीता १३ । २६) । अतः यह कहना कि हम सब प्रकृतिसे उत्पन्न हैं तभी ठीक माना जा सकता है, जब हम परमात्माकी परा और अपरा दोनों प्रकृतियोंको मिलाकर प्रकृति शब्दका प्रयोग करते हैं, अन्यथा अकेली जड प्रकृतिसे जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

हम कोई कार्य प्रकृतिके प्रतिकूल करते हैं तो प्रकृति हमको समुचित दण्ड देती है, पर देती है उस सर्वप्रेरक परमेश्वरके विधानके अनुसार ही । इस बातको कभी नहीं भूलना चाहिये ।

बीज और वृक्ष आदिके विकासके विषयमें भी आपने जो कुछ लिखा है उसका भी यही उत्तर है कि जितना भी विकास होता है सब जड और चेतनके संयोगसे और उन दोनोंके प्रेरक भगवान्‌की प्रेरणासे ही होता है । अतः आपका यह कहना कि प्रकृति स्वयं ही कर्मोंकी फलदात्री है, अन्य कोई उसका प्रभु नहीं है—सर्वथा युक्तिविरुद्ध और शास्त्रविरुद्ध है; क्योंकि जड प्रकृतिको क्या पता कि किसका क्या कर्म है और उसका कौन-सा फल उसे कब और किस प्रकार देना चाहिये । क्रिया तो होते-होते ही नष्ट हो जाती है, उसके संस्कार किसमें और किस प्रकार किसके आश्रित संगृहीत होते हैं; इसपर विचार करना चाहिये ।

ज्ञान, आनन्द और विचार बिना चेतनके प्रकृतिमें कैसे रह सकते हैं ? वह यह विभाजन कैसे करेगी कि किसको ज्ञान देना

चाहिये, किसको किस कर्मका फल किस प्रकारके सुख-दुःखके रूपमें देना चाहिये—इत्यादि ।

अतः यह मानना ही पड़ेगा कि उस प्रकृतिको नियमितरू चलानेवाला और प्रेरणा देनेवाला, जीवोंके साथ उसका यथायो सम्बन्ध जोड़नेवाला—उसका अधिष्ठाता, निर्माता और प्रेरक क अवश्य है और वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है । उसीका प्रकृति अधिकार है और प्रकृतिका उसपर कोई अधिकार नहीं है ।

प्रकृतिका अधिकार तो एक सिद्ध योगीपर भी नहीं रहता, फि परमेश्वरकी तो बात ही क्या है ! प्रकृतिके कार्यको परमेश्वर तो पलट ह सकते हैं, इसके अतिरिक्त योगी भी पलट सकता है । फिर आप यह कैसे निश्चय किया कि कोई भी पलट नहीं सकता । आ ही बताइये कि मीराँपर जहरका असर क्यों नहीं हुआ ? प्रह्लादक आग क्यों नहीं जला सकी ?—इत्यादि । × × × ।

---

[१७]

सादर हरिस्मरण । सम्पादक 'कल्याण'के पतेसे दिया हुआ आपका पत्र यथासमय मिल गया था । पत्र लंबा होने और अवकाश कम मिलनेके कारण पत्रका उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया, इसके लिये किसी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये । आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) आपके पारिवारिक एवं आजीविकासम्बन्धी हालचाल मालूम किये । आपके बहुत चेष्टा करनेपर भी घरमें मेल स्थापित

न हो सका तो इसे भगवान्‌का विधान समझकर संतोष करना चाहिये। आपके माता-पिता आपसे अलग रहते हैं और अलग रहनेमें ही संतुष्ट हैं तो कोई बात नहीं, अलग-अलग रहें।

(२) आप श्रीकृष्णके उपासक हैं और 'श्रीकृष्णः शरणं मम' इस मन्त्रका रोज १८ माला जप कर लेते हैं—यह बहुत उत्तम है। किंतु माला फेरते समय मन जो इधर-उधर फिरता रहता है और केवल जिह्वा चलती रहती है, इसमें सुधार करनेकी आवश्यकता है। मनपूर्वक किया हुआ साधन अधिक लाभकारी है। इसलिये मनको गीता अध्याय ६ श्लोक ३५-३६ के अनुसार अभ्यास-वैराग्यके द्वारा वशमें करना चाहिये। जिन-जिन सांसारिक विषयोंकी ओर वह जाता है उनसे खींचकर बारंबार भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेके लिये उसे भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धामके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यके चिन्तनमें लगाना चाहिये। श्रद्धा-प्रेम होनेपर मन इधर-उधर नहीं जा सकता।

उपर्युक्त मन्त्रका मानसिक जप तो हर समय किया जा सकता है, पर मलमूत्र-त्यागके समय मुँहसे उच्चारण नहीं करना चाहिये।

आप 'गीतातत्त्वविवेचनी' पढ़ते हैं और मेरी मान्यतापर आपकी श्रद्धा है—यह आपके भावकी बात है। गीताका मननपूर्वक अध्ययन करना साधनमें बहुत ही सहायक है। आप सत्पुरुषोंके, भक्तोंके जीवन-चरित्र पढ़ते हैं और पढ़ते समय आपके नेत्रोंसे बहुत अश्रुपात होने लगते हैं, यह बहुत अच्छी बात है। भक्त-चरित्र पढ़कर हृदयका

द्रवीभूत होना—यह प्रेमका ही लक्षण है। इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होकर वह भगवान्‌की ओर शीघ्र लग सकता है।

यह सब होनेपर भी 'दैनिक जीवनमें काम-क्रोध बहुत उत्पन्न होते हैं'—लिखा सो इनके नाशके लिये भगवान्‌से श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करुणाभावसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

आपको वेतन कम ही मिलता है। यदि कहीं अधिक वेतनकी अच्छी जगह मिले तो बादमें इस कामको छोड़ देना चाहिये। आपने लिखा कि ऐसी परिस्थितिमें बहुत दुःख होता है और भगवान्‌का विस्मरण होकर मन चकित होता है सो इस प्रकारकी कष्टमय परिस्थिति आनेपर भी मनमें धैर्य रखना चाहिये। भगवान्‌की स्मृतिमें कमी नहीं आने देनी चाहिये। जो भी परिस्थिति प्राप्त हो उसे भगवान्‌का विधान मानकर संतोष करना चाहिये। यदि लड़के काम करनेयोग्य हों तो उनको किसी कार्यमें लगाना चाहिये एवं ऐसी कष्टकी स्थितिमें पत्नीको भी सिलाई आदिका काम कराकर कुछ धनोपार्जनमें लगाना चाहिये; क्योंकि आजकलके समयमें एक आदमीके वेतनसे आठ प्राणियोंका भरण-पोषण होनेमें कठिनाई ही रहती है।

(३) आप अपनेको भक्तिका साधन करने लायक समझते हैं सो बहुत ठीक है। आपको भक्तिका साधन ही करना चाहिये। आपने कर्मयोग और भक्तियोगका तथा भक्ति और सांख्ययोगका भेद जानना चाहा सो ठीक है। सम्पूर्ण कर्मोंमें और पदार्थोंमें फलकी इच्छा और आसक्तिका त्याग करके अपने लिये शास्त्रोंमें विहित कर्मोंको

रना और उनकी सिद्धि या असिद्धिमें समभाव रहना—यह र्मयोग है; इसमें कर्मकी प्रधानता है (गीता अध्याय २ श्लोक १७-४८ देखें)। इसके साथ भक्ति भी हो तो उसे भक्तिप्रधान कर्मयोग कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ भगवदर्थ कर्म और २ भगवदर्पण कर्म। जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, भगवान्‌के आज्ञानुसार किये जाते हैं उनको 'भगवदर्थ' कहते हैं (गीता ११। ५५; १२। १० देखें) और जो कर्म करते समय या बादमें भगवान्‌के अर्पण कर दिये जाते हैं उनको भगवदर्पण कहा जाता है (गीता ९। २७; १८। ५६-५७ देखें)। इस प्रकार भक्तियोगमें भक्तिकी प्रधानता रहती है और कर्मयोगमें कर्मकी प्रधानता। गीता अध्याय २ श्लोक ४७-४८ में केवल कर्मयोग है और अध्याय १० श्लोक ८, ९, १० में केवल भक्ति है तथा अध्याय ११ श्लोक ५४-५५ में भक्तिप्रधान कर्मयोग है। भक्ति और कर्मयोग—ये दोनों एक साथ किये जा सकते हैं। भक्तिमती गोपियोंमें भक्तिकी प्रधानता थी, पर साथमें वे अपने घरका काम-काज भो करती थीं। वे भगवान्‌के पावन नाम और गुणोंका स्मरण, कीर्तन और गान करती हुई ही सब काम किया करती थीं। (देखिये श्रीमद्भागवत १०। ४४। १५)। इस प्रकार उनके जीवनमें भक्तिप्रधान कर्मयोग था।

आपने जिन उद्धव, चैतन्यमहाप्रभु, नरसी मेहता आदि भक्तोंका उल्लेख किया है, ये प्रायः सभी भक्तिमार्गके भक्त हुए हैं। किसी-किसीके भक्तिके साथ कर्म भी चलते थे; परंतु सांख्यमार्गके साथ भक्तिमार्ग नहीं चल सकता; क्योंकि सांख्यमार्गमें अद्वैतवाद है और

भक्तिमें द्वैतवाद। ये दोनों एक दूसरेसे भिन्न हैं । सांख्ययोगमें एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके सिवा अन्य कुछ भी नहीं—इस प्रकारकी मान्यता और सम्पूर्ण कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका अभाव रहता है और भक्तियोगमें स्वामी-सेवक आदि भावकी मान्यता तथा सब कर्मोंको भगवदर्थ या भगवदर्पण-बुद्धिसे करनेका भाव रहता है । विस्तारसे जानना चाहें तो गीतातत्त्वविवेचनीकी भूमिकामें 'सांख्यनिष्ठा और योगनिष्ठाका स्वरूप' प्रसङ्ग तथा गीतातत्त्वविवेचनीमें अध्याय ३ श्लोक ३ और अध्याय ५ श्लोक २ की व्याख्या देखनी चाहिये। साथ ही गीताप्रेससे प्रकाशित 'तत्त्व-चिन्तामणि भाग १' में गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोग 'तथा' गीतोक्त निष्काम कर्मयोगका स्वरूप' शीर्षक लेख पढ़ने चाहिये ।

आपके लिये गीता, तुलसीकृतरामायण, भागवत, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, नारदभक्तिसूत्र, शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र तथा अन्य गीताप्रेसकी पुस्तकें—इन ग्रन्थोंको मननपूर्वक पढ़ना अधिक उपयुक्त हो सकता है । भक्तिके साधकको वेदान्तके ग्रन्थोंका अध्ययन करना विशेष आवश्यक नहीं है ।

आपने पूछा कि किस प्रकार किस दृष्टिसे हरेक कर्म करना चाहिये सो ठीक है । आपके लिये भक्तिका साधन करना और भगवान्‌की सेवाके रूपमें अपने कर्तव्य-कर्मोंका पालन करना सर्वोत्तम है । अभिप्राय यह कि प्रातःकाल और सायंकाल तथा जब भी अवकाश मिले, एकान्तमें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान और उनके गुण, प्रभाव, तत्त्व,

ह्स्यका मनन करना तथा गीता-रामायण आदि शास्त्रोंका अध्ययन
रना चाहिये एवं अपने न्याययुक्त कर्तव्य-कर्मोंको करते समय तथा
र समय चलते-फिरते, खाते-पीते हुए भी भगवान्के नाम-रूपको
द्धा-भक्तिपूर्वक नित्य-निरन्तर स्मरण रखते हुए ही सब काम करना
ौर सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान्का स्वरूप समझकर उनकी निःस्वार्थ
ावसे सेवा करनी चाहिये। हर समय यही दृष्टि रखनी चाहिये
के दूसरोंका हित किस प्रकार हो।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका जप पवित्र अवस्थामें
ो उच्चारणपूर्वक किया जा सकता है, इसमें कोई आपत्ति नहीं।
किंतु अपवित्र अवस्थामें इस मन्त्रका उच्चारण करनेका शास्त्रमें
निषेध है। पर मानसिक जप करनेमें शास्त्राज्ञाका भङ्ग नहीं होता,
अतः मानसिक जप सब समय किया जा सकता है।

(४) मालिक जो यह चाहते हैं कि हमारा नौकर हमारा
पैसा न चुरावे और ईमानदार रहे, यह मालिककी कृपा है और आपके
लिये लाभकी वस्तु है। उनकी इस इच्छाका आदर करना चाहिये।
किंतु वे जो यह चाहते हैं कि यह बाजारसे वजन और नापमें
१०० का १०१ खरीदे और ९९ बेचे, यह उचित नहीं है।
आपको ऐसा नहीं करना चाहिये और इसके लिये मालिकसे विनय-
पूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना कर देनी चाहिये कि ऐसा करनेके
लिये मैं लाचार हूँ। एवं इसके बदलेमें जो भी कष्ट सहन
करना पड़े, सह लेना चाहिये; किंतु बेईमानी कभी नहीं
करनी चाहिये।

(५) कोई भी मनुष्य किसीसे द्वेष रखकर उसे पहुँचाता है तो वह उसे कष्ट पहुँचानेमें निमित्त बनकर पापका भागी होता है। उस व्यक्तिको जो कष्ट या नुकसान होता है- वह उसके पूर्वकृत पापकर्मका फल है, दूसरा व्यक्ति तो निर्ि बनकर केवल अपने सिरपर पापकी गठरी रख लेता है। बि प्रारब्धके किसीको नुकसान या कष्ट हो नहीं सकता। इस रहस्य समझकर जो कुछ भी कष्ट प्राप्त हो, उसमें दुःख नहीं मान चाहिये। बल्कि उसे अपने परम दयालु प्रभुका विधान मानकर प्रस होना चाहिये। जो व्यक्ति अपने साथ द्वेष रक्खे, बदलेमें उस प्रेम ही करे, वह अपना बुरा करे तो भी उसका उपकार ही करे साधक चाहे क्षत्रिय हो या वैश्य—सबके लिये उपर्युक्त श्रेष्ठ व्यवहा करना ही उचित है। कहीं न्याययुक्त प्रतीकार करना आवश्यक हो तो उसके हितकी दृष्टिसे अपने अधिकारके अनुसार प्रतीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं।

(६) आपका मित्र-परिवार दस बारह वर्षसे प्रतिदिन आध्यात्मिक पुस्तकोंका अध्ययन कर रहा है, जप भी करता है, यह बड़ी उत्तम बात है; किंतु शास्त्रने निषेध किया है, इसलिये 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' या 'ॐ श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय नमः' मन्त्रका अपवित्र अवस्थामें उच्चारण करके जप करना उचित नहीं है। उपर्युक्त मन्त्रोंका मानसिक जप हर समय कर सकते हैं।

(७) अनिच्छा और परेच्छासे जो कुछ भी सुख-दुःख और घटना प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का विधान समझ लेनेपर फिर

काम-क्रोध नहीं हो सकते। हर एक परिस्थितिकी प्राप्तिमें भगवान्‌की दयाका दर्शन करना चाहिये और ऐसा समझना चाहिये कि जो परिस्थिति प्राप्त हुई है, यह भगवान्‌की ही भेजी हुई है और वे परम कृपालु भक्तवत्सल भगवान् हमारे हितके लिये ही करते हैं। उनका प्रत्येक विधान हमारे लिये मङ्गलमय ही होता है। इस प्रकार समझनेपर फिर न तो क्रोध आ सकता है और न कामना ही रह सकती है। जो सदा-सर्वदा सबको अपने परम प्रेमी भगवान्‌का ही स्वरूप समझता और सर्वत्र उनका दर्शन करता रहता है उसके तो ये काम-क्रोध आ ही कैसे सकते हैं! रामायणमें श्रीशिवजीने कहा है—

> उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
> निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥
>
> (उत्तरकाण्ड दोहा ११२ ख)

आपने लिखा कि 'प्रतिदिन दो प्रकारकी विचारधाराका संघर्ष होता है, तब दानवताकी ही जय होती है' सो जब ऐसा हो तभी उसे अपने साधनमें अत्यन्त बाधक और बुरा काम समझकर उसके लिये मनमें अत्यन्त पश्चात्ताप करके उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिये।

(८) 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', 'ॐ नमो वासुदेवाय', 'वासुदेवाय नमः'—ये तीनों ही जप-मन्त्र हो सकते हैं। अधिकतर शास्त्रोंमें पहलेवाले 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्रका ही उल्लेख मिलता है। जिस मन्त्रमें ॐ हो उसे अपवित्र अवस्थामें उच्चारण करनेमें शास्त्रका निषेध है, अतः 'वासुदेवाय नमः' का

तो किसी भी समय उच्चारण किया जाय तो कोई आपत्ति न पर उपर्युक्त अन्य दो मन्त्रोंको हर समय जपें तो मानसिक जपना चाहिये। इन मन्त्रोंका जप करते हुए श्रीविष्णु भगवान्‌ ध्यान करना बहुत उत्तम है, अतः अवश्य करना चाहिये।XX
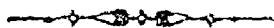
[१८]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। जपके विषयमें आपने जो-जो बातें लिखीं, सब पढ़ ली हैं उनका उत्तर इस प्रकार है—

१. सर्दीकी ऋतुमें यदि सायंकाल स्नान करना असह्य हो तो हाथ-पैर और मुँह धोकर भी गायत्रीका जप और संध्या कर सकते हैं।

२. जप करते समय कण्ठ और जिह्वा शुष्क होने लगे तो आचमन कर लेना चाहिये।

३. आप लिखते हैं कि मैं जप मानसिक करता हूँ और यह भी लिखते हैं कि जिह्वा और कण्ठ थक जाते हैं। ये दोनों बातें परस्पर मेल नहीं खातीं; क्योंकि मानसिक जपमें कण्ठ और जिह्वासे कोई काम ही नहीं लिया जाता, तब वे दोनों थकेंगे क्यों? आगे चलकर आप यह भी लिखते हैं कि जिह्वा अपने-आप हिलने लगती है, इससे भी यही समझमें आता है कि आपका जप मानसिक नहीं होता; आप कण्ठ और जिह्वासे होनेवाले जपको ही मानसिक मानते हैं।

४. आपने लिखा कि 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका जप करूँ तो कष्ट कम होता है, पर विचार तो यह करना है कि साधनमें कष्ट होना ही क्यों चाहिये। यह तो तभी होता है जब साधक अपने साधनको ठीक समझ नहीं पाता है और सुनी-सुनायी बातोंपर मनमाने तरीकेसे साधन करता रहता है। वास्तवमें जो साधन अपनी योग्यता, विश्वास और रुचिके अनुरूप हो, वही साधन है। वह साधकको कभी भाररूप मालूम नहीं होगा। उसमें थकावट कभी नहीं आयेगी और उत्तरोत्तर रुचि बढ़ेगी। साधन अपने-आप होगा। उसका न होना असह्य हो जायगा। जगनेसे लेकर शयन करनेतक एवं साधनके आरम्भसे मृत्युपर्यन्त हर समय साधन-ही-साधन होगा। उसकी कोई भी क्रिया ऐसी नहीं होगी, जो साधनसे रहित हो।

आप जप करना अपना स्वभाव बना लें, उसपर जोर डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं; प्रेमपूर्वक करते रहें। संख्या शीघ्र पूर्ण करनेका या अधिक करनेका आग्रह छोड़ दें। शान्तिपूर्वक मन्त्रके अर्थको समझते हुए और उसके भावसे भावित होकर जप करें, ऐसा करनेपर थकावटका सवाल नहीं आ सकता। जबतक जप या अन्य कोई भी साधन बोझ मालूम होता है, तभीतक उसमें थकावटकी प्रतीति होती है।

५. आपने लिखा कि पहले मेरा मन थोड़ा मन्त्रके अर्थ और भगवान्‌के चिन्तनमें लगने लगा था, परंतु अब सारा जोर उच्चारणकी ओर ही लग जाता है। अतः आपको विचार करना चाहिये

कि ऐसा क्यों होता है। विचार करनेपर माॡम हो सकता है कि इसका कारण जल्दीबाजी अर्थात् थोड़े समयमें अधिक संख्या पूरी करनेका आग्रह है; जो कि भगवान्‌के चिन्तनका महत्त्व न जाननेके कारण होता है। इसलिये भाव और ध्यानसहित ही जप करना चाहिये, चाहे वह संख्यामें कम ही हो।

६. आपका आहार सदासे ही सादा है, यह अच्छी बात है। चाय भी कोई लाभप्रद नहीं है। इसके स्थानपर गायका दूध पीना अच्छा है।

७. मन्त्रका उच्चारण आप अपनी जानकारीके अनुसार शुद्ध करनेकी चेष्टा रखते ही हैं; यह बहुत ठीक है। जप करते समय आप पवित्र होकर बैठते हैं, यह भी ठीक है। साथ ही मनको भी पवित्र रखनेका ख्याल रखना चाहिये। मनमें बुरे और व्यर्थ संकल्पोंका न आना ही मनकी पवित्रता है।

८. जप और भगवद्-चिन्तन करते समय साधकको चाहिये कि सब प्रकारकी कामनासे रहित होकर बैठे। किसी भी व्यक्ति और वस्तुमें आसक्त न हो। ऐसा करनेसे शान्ति और सामर्थ्य बढ़ सकती है। फिर थकावट होना सम्भव नहीं है।

९. यदि स्त्रियाँ मासिकधर्म होनेपर भी छूआछूतका विचार नहीं रखतीं, अपवित्रता फैलाती हैं तो उनपर किसी प्रकारका दबाव न डालकर अपना भोजन शुद्धतापूर्वक अलग अपने हाथसे बना लेना चाहिये। इसका कारण कोई पूछे तो बड़ी शान्तिके साथ कह देना चाहिये कि मेरी रुचि ही ऐसी है, क्या करूँ?

इसके अतिरिक्त न तो उनके व्यवहारसे दुखी हो, न किसीको बुरा-भला कहे और न किसीपर क्रोध ही करे। ऐसा करनेमें उनका भी हित है और आपका तो हित है ही। ऐसा व्यवहार करनेपर स्त्रियोंको भी अशुद्धि फैलानेसे सावधानी हो सकती है।

१०. स्त्रियोंमें लज्जाका भाव जाता रहा है, इसके लिये आपको दुःख नहीं करना चाहिये। संसारमें इस प्रकारके परिवर्तन समय-समयपर हुआ करते हैं। साधकको तो अपने कर्तव्यमें सावधान रहना चाहिये। बिना पूछे दूसरेका कर्तव्य बताना उसका काम नहीं है। इसी प्रकार दूसरेकी त्रुटियोंको देखना भी साधकका काम नहीं है। उसे तो चाहिये कि अपने कर्तव्यका पालन करते हुए निःस्वार्थभावपूर्वक दूसरोंके मनकी धर्मानुकूल इच्छाको पूरी करता रहे।

११. कन्याका विवाह समय आनेपर संयोगसे ही होता है, यह बात ही अधिक ठीक है; तो भी कन्याके माता-पिता आदि अभिभावकोंको अपनी ओरसे चेष्टा करते रहना चाहिये। अपने कर्तव्यपालनमें उनको शिथिलता नहीं करनी चाहिये। भाग्यका विश्वास चिन्ता मिटानेके लिये है, किसीको कर्तव्यच्युत या कर्महीन आलसी बनानेके लिये नहीं।

१२. श्रद्धाके योग्य ब्राह्मण उपलब्ध न हों तो जो मिलें उनमेंसे अच्छा देखकर सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन करा देना चाहिये। वह यदि प्याज वगैरह खाता हो तो उसका उपाय करना आपके हाथकी बात नहीं है। आप अपने

घरमें उसे वे वस्तुएँ न खिलावें, इतना ही कर सकते हैं। आप तर्पण प्रतिदिन करते हैं, यह बहुत अच्छा है।

---

[१६]

सादर हरिस्मरण।

आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—

श्वासजप भी नामजपकी एक उत्तम विधि है; नामजपसे कोई अलग बात नहीं है। नामजप जिह्वासे उच्चारण करके होठ हिलाते हुए किया जा सकता है तथा होठ न हिलाकर केवल जिह्वाके द्वारा भी किया जा सकता है, जो दूसरेको सुनायी नहीं देता। इसके अतिरिक्त श्वासके द्वारा, नाड़ीके द्वारा और अनहदनाद-के द्वारा तथा मनके द्वारा भी जप किया जा सकता है।

श्वासके द्वारा जप करनेकी विधि भी कई प्रकारकी है। जैसे—

१. श्वास भीतर जाते समय एक नाम और आते समय एक नाम भावनासे श्वासके साथ जोड़ देना।

२. श्वास जाते-आते समय जो उसका कण्ठोंसे स्पर्श होता है और शब्द होता है, उसमें नामकी भावना करना। इसमें कोई 'हरे राम' के पूरे मन्त्रका कोई आधे मन्त्रका जप कर लेते हैं। कोई-कोई इससे भी अधिक कर लेते हैं। जैसा जिसका अभ्यास। सबके लिये एक विधि नहीं है।

मनको एकाग्र करनेके लिये अभ्यास और वैराग्य दो उपाय बतलाये गये हैं (गीता ६ । ३५)। इन दोनोंमें बिना वैराग्यके केवल अभ्यासद्वारा की हुई एकाग्रता स्थायी नहीं होती। भोगोंमें वैराग्य होनेपर भगवान्‌में और उनके नाममें प्रेम हो जाता है। तब जप करनेमें मन स्वतः लगता है, उसकी चञ्चलता मिट जाती है। बिना मनके किये हुए पाठ, स्तुति और जप आदिका महत्त्व नहीं है, ऐसी बात नहीं है; पर मनसहित किये जानेवाले साधनका महत्त्व बहुत अधिक है। जैसे वैज्ञानिक रीतिसे वस्तुओंका उपयोग करनेमें और बिना तत्त्व समझे उनके साधारण उपयोगमें बड़ा भारी अन्तर है।

---

[२०]

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार विदित हुए। उत्तर इस प्रकार है—

(१) भगवत्प्राप्तिका मार्ग अनादिकालसे हृदयस्थ शङ्काओंको मिटानेके लिये ही अपनाया जाता है। अतः छिपी हुई शङ्काएँ सामने आती रहती हैं और समाधान होनेपर शान्त हो जाती हैं। इस दृष्टिसे शङ्काओंका होना लाभप्रद है, पर जो स्वयं तो विवेकद्वारा समझता नहीं और समझानेवालेपर श्रद्धा नहीं करता, उसके लिये शङ्का हानिकर हो जाती है। जबतक भगवान्‌का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तबतक शङ्काओंका समूल नाश नहीं होता।

शि० प्र० ६—

है। नाम और नामीकी एकता है। इस दृष्टिसे नामको भी अक्ष
ब्रह्म कहा जाता है और प्रभुके स्वरूपकी ही भाँति उनके नाम
भी ध्यान किया जा सकता है। ॐकार भगवान्‌के निर्गुण अ
सगुण दोनों ही रूपोंका वाचक है। अतः दोनों ही प्रकार
उपासक इसके द्वारा उपासना कर सकते हैं।

(११) रामचरितमानसके पाठमें सम्पुट उस चौपाईक
लगाया जाता है, जिसमें पाठककी कामना स्पष्ट व्यक्त होती हो
यदि सकाम न हो तो उसका लगाया जाता है, जो साधकको
अधिक प्रिय हो, जिसके बार-बार बोलनेमें उसको अधिक प्रेम
उमड़ता हो या भावकी जागृति होती हो और भगवान्‌की स्मृति
होती हो। सम्पुट लगाये जानेसे वह कार्य सिद्ध होता है या नहीं,
यह तो पाठककी श्रद्धा या प्रीतिपर तथा फलदाता ईश्वरकी
इच्छापर निर्भर है।

(१२) गीता और रामायणका कितना पाठ करना चाहिये,
इसकी सीमा नहीं होती। पाठ करनेवाला जितना कर सके,
जहाँतक उसको कोई अड़चन या थकावटका अनुभव न हो,
उत्साहमें कमी न आये, भाव बढ़ता रहे, वहाँतक अवकाशके
अनुसार करते रहना अच्छा है।

(१३) पितर चाहे जिस योनिमें गया हो, उसके निमित्त-
से किया हुआ श्राद्ध आदि पुण्यका फल उसे प्रत्येक योनिमें समय-
पर मिलता रहता है। जैसे पुरुषको अपने किये हुए कर्मोंका फल
मिलता है, उसी प्रकार उसके निमित्त दूसरोंके द्वारा दिये जानेपर

भी उसे मिलता है। जैसे बैंकमें कोई भी चाहे जिसके नामपर रुपया जमा कर सकता है, पर वापस नहीं ले सकता।

(१४) ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदयसे चार घड़ी पहलेका समय माना गया है। गायत्रीमन्त्रका जप वैसे तो जब भी पवित्र होकर किया जाय तभी अच्छा है। पर सूर्योदयसे पहलेका समय अधिक उत्तम है, क्योंकि उस समय चित्त शान्त रहता है।

(१५) आत्माको पहचाननेका तरीका है—नित्य और अनित्यका विवेचन और समझमें आयी हुई बातपर दृढ़ विश्वास।

[२१]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पोस्टकार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

(१) भगवान् सब कुछ कर सकते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनकी भगवत्ता ही कैसी ? भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है उसमें भी कारण तो भगवान् ही हैं। अतः उनकी कृपासे होना और उनके द्वारा किया जाना दो बात नहीं है। पर भगवान् ऐसा कब और क्यों करते हैं, यह दूसरा कोई नहीं बता सकता। अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार सब कहते हैं, पर असली कारण और रहस्यको भगवान् स्वयं ही जानते हैं।

(२) प्रारब्धका भोग अमिट अवश्य है, पर वहींतक अमिट है, जहाँतक मनुष्यकी सामर्थ्यका विषय है। भगवान् सर्वशक्तिमान्

हैं, उनके लिये कोई काम असम्भव नहीं कहा जा सकता। असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। भगवान्‌ने जो यह है कि—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
(रामचरित० सुन्दर० ४३)

—यह उनके अनुरूप ही है, क्योंकि वे शरणागतव ठहरे। अतः तुलसीदासजीका लिखना सर्वथा ठीक है।

(३) प्रह्लादकी रक्षामें उसका प्रारब्ध कारण नहीं उसमें तो एकमात्र भगवान्‌की उस महती कृपाका ही महत्त्व जो कि अचल निष्ठा और विश्वासके कारण कहीं-क आवश्यकतानुसार अपना प्रभाव प्रत्यक्ष प्रकट करती है।

(४) भगवान्‌का भक्त भगवान्‌से किसी भी वस्तुके लि याचना करे तो भी भगवान् नाराज नहीं होते। यदि उचि समझते हैं तो उसकी कामनाको पूरी भी कर देते हैं। पर भगवान्‌के प्रेमी भक्त हैं, जिनका एकमात्र प्रभुमें ही प्रेम है, उन मनमें कामनाका संकल्प ही नहीं उठता। उनके विचारमें जगत् कोई भी वस्तु आवश्यक ही नहीं रहती। वे तो जो कुछ करते भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करते हैं और जो कुछ होता है उ भगवान्‌की कृपा मानते हैं; इसलिये उनके लिये कामना या याचना का कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

दण्डकवनके ऋषि-मुनि और अन्य संत, जो दानवी और भौतिक शक्तिसे मारे गये, उनकी रक्षा करनेमें भगवान्‌की कृपाशक्ति असम

थी, ऐसी बात नहीं है; उनके शरीरोंका नाश उस प्रकार कराना ही भगवान्‌को अभीष्ट था, इसलिये रक्षा नहीं की। जिनकी रक्षा करना आवश्यक था, उनकी रक्षा कर ली। भगवान्‌की कृपा कौन-सा काम क्यों करती है और क्यों नहीं करती, इसका अनुमान मनुष्य कैसे करे ?

(५) भौतिक या आसुरी शक्तियोंको परास्त करनेका सर्वोत्तम उपाय भक्तियुक्त निष्काम सेवा है। जिसको इस भौतिक जगत्‌से कुछ लेना नहीं है, केवल भगवान्‌के नाते उनके आज्ञानुसार उन्हींकी कृपासे मिली हुई शक्तिसे जगत्‌की सेवा-ही-सेवा करना है, वह समस्त भौतिक और आसुरी शक्तियोंको अनायास परास्त कर सकता है। प्रह्लाद भी भगवान्‌का निष्कामी और परम विश्वासी एकनिष्ठ भक्त था। ऐसे भक्तसे भगवान् स्वयं मिलते हैं, छिप नहीं सकते।

---

[२२]

सादर हरिस्मरण !

आपका पोस्टकार्ड मिला, समाचार माल्रम हुए। उत्तर इस प्रकार है—

आप चिकित्साकार्य वृत्तिके लिये करते हैं तो इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। आप वृत्तिके लिये करते हुए भी अपने कामसे जगत्-जनार्दनकी सेवा कर सकते हैं। जीविकाके लिये दूसरा काम खोजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी समझमें

आप क्षत्रिय हैं, आपके अभीतक यज्ञोपवीत नहीं हुआ है यज्ञोपवीत-संस्कार करा लेना चाहिये।

××× यह आपका लिखना ठीक ही है कि सत्सङ्गके वि शिथिलता आ जाती है। इसीलिये वर्षमें लगभग चार मास ऋषिके में सत्सङ्गका आयोजन किया जाता है।

आपने अपनेपर कृपा करनेके लिये लिखा, सो मुझमें कृ करनेकी सामर्थ्य है ही कहाँ! कृपा तो भक्तवत्सल, कृपानिधा भगवान् ही कर सकते हैं और उनकी कृपा सबपर है ही। ज अपनेपर जितनी कृपा माने, वह उतना ही लाभ उठा सकता है अतः अपनेपर उनकी अधिक-से-अधिक कृपा माननी चाहिये भगवान्‌की कृपाका वर्णन करते हुए आपने स्वयं लिखा कि अत्यन् पापी होते हुए भी मुझे भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर दिया और इसप भी कृपा करके सत्सङ्ग प्राप्त करा दिया, मोक्षकी इच्छा भी जाग्रत कर दी तथा साधन भी मालूम करा दिये एवं रात-दिन कृपाकी वर्ष करते ही रहते हैं, सो आपका इस प्रकार मानना बहुत ही उत्तम है। अबतक इतना होते हुए भी ठीक रास्तेपर न आ सकनेका कारण पूछा, सो कारण तो श्रद्धाकी कमी ही है। भगवान्‌की कृपाविषयक जो बातें आपने लिखी हैं और मैंने उद्धृत की हैं, उन बातोंपर आप-का दृढ़ विश्वास होना चाहिये। श्रद्धा और विश्वास होनेपर सारी कमियोंकी पूर्ति हो सकती है। भगवान्‌की प्राप्तिमें विलम्ब होनेका हेतु अश्रद्धा ही है। इसके लिये शरणागतवत्सल भगवान्‌की शरण लेकर उनकी प्राप्तिके लिये तत्परतासे साधनमें लग जाना चाहिये; फिर उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। सबसे यथायोग्य।

सादर हरिस्मरण ।

आपका पत्र मिला । कीर्तनमण्डलियोंका तो एकमात्र उद्देश्य भगवन्नामप्रचार होना चाहिये, उसमें वाद-विवादको स्थान कहाँ ? वाद-विवाद तो वहीं होता है जहाँ प्रचारका उद्देश्य अपनी मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा बढ़ाना हो या लोगोंको रिझाकर उनसे कुछ प्राप्त करना हो । जिस मण्डलीका ऐसा उद्देश्य है वह कहनेके लिये कीर्तन-मण्डली भले ही हो, पर वास्तवमें उसे सङ्गीत-मण्डली कहना चाहिये ।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) कीर्तन देवालयमें न होकर घरमें हो तो भी कोई हर्ज नहीं है । कीर्तनके साथ मानसकी चौपाइयोंका बोलना भी उत्तम है, पर चौपाइयाँ भावपूर्ण हों । चौपाईके साथ कजली आदिकी तुक न लगाकर 'जय सीताराम' आदि भगवन्नामकी तुक लगानी चाहिये; क्योंकि कीर्तन तो वास्तवमें भगवान्‌के नाम-रूप और गुण-प्रभावका ही करना है । राग-रागिनी मात्रका नाम कीर्तन थोड़े ही है, उसका नाम तो संगीत है ।

(२) रामायणको बोलते-बोलते थक जानेपर विश्राम लेना तो कोई बुरी बात नहीं है, पर विश्रामके समय भी भगवान्‌के गुण-प्रभावकी ही चर्चा होनी चाहिये, व्यर्थ बातों या बाजोंकी धुनमें समय नष्ट नहीं करना चाहिये । रामायणकी जिन चौपाइयोंको बोला जाय, उनके अर्थपर विचार-विमर्श हो तो वह और भी अच्छा है ।

(३) रामायण और कीर्तनके समय यदि पेशाबकी हाजत हो जाय तो बाहर जाकर पेशाब कर आना कोई बुरी बात नहीं है। धूम्रपान तो वस्तुतः तामसी ही है, उसका तो सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिये। बाहर जाते समय सभ्यता और विनयपूर्वक चुपकेसे जाना और आना चाहिये, जिससे बैठे हुए लोगोंमेंसे किसी-को भी न तो कष्ट हो और न किसीका अपमान ही हो।

(४) कीर्तनके साथ सिनेमाके गानेका सम्बन्ध कतई नहीं जोड़ना चाहिये। जिस मण्डलीका उद्देश्य भगवान्‌के नाम-रूप और गुण-प्रभावका कीर्तन करना है, उसे विषयवासनाको बढ़ानेवाले गानों और रागोंकी क्या आवश्यकता? उसे तो भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेवाले भावपूर्ण गानोंको गाना चाहिये। वे यदि पूर्वके संतोंके द्वारा रचे हुए हों तब तो बहुत ही ठीक है और यदि किसी वर्तमान अनुभवी संतके बनाये हुए हों तो भी अच्छा ही है। विषयासक्त लोगोंके कहने या दबाव डालनेपर अपने सिद्धान्तके विपरीत गाना गानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

(५) कीर्तनके बीचमें यदि कोई दूसरा व्यक्ति सिनेमाका गाना आरम्भ कर दे तो उसे नम्रतापूर्वक अवश्य मना कर देना चाहिये। साँवलियाका अर्थ श्रीकृष्ण लगाना कोई अनुचित नहीं है, पर गानेका भाव दूषित और कामोत्तेजक हो तो नहीं गाना चाहिये।

(६) कीर्तनसमाजके सदस्यका कीर्तन समाप्त होनेके पहले बीचमें सिनेमाका गाना आरम्भ कर देनेवालेको रोकना अनुचित नहीं है। पर वह रोकना सभ्यता, विनय और प्रेमके साथ शान्तिपूर्वक

होना चाहिये, उद्दण्डता और अपमानपूर्वक या द्वेषकी भावनाको लेकर नहीं।

(७) शास्त्रीय इतिहासके आधारपर किसी भक्तकी गाथा गीतके रूपमें रची गयी हो और उसका भाव भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेमें सहायक हो तो उसका गाना अनुचित नहीं है। उसको कीर्तनका रूप भी दिया जा सकता है, यदि उसमें भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और गुण-प्रभावका वर्णन हो।

---

[२७]

आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आपने पत्रके अन्तमें लिखा है कि इस पत्रका उत्तर जयदयालजी गोयन्दका ही दें, इसलिये आपको ज्ञात कराया जाता है कि मैं पत्रका उत्तर स्वयं नहीं लिख सकता, मेरी आँखें कमजोर हैं। उत्तर दूसरेसे लिखवाकर उसे सुन लिया करता हूँ, अतः इसीसे आपको संतोष करना चाहिये।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

पुराणोंमें देवताओं और अन्य महान् व्यक्तियोंके जन्म तथा चरित्रोंमें, उनकी कथाओंमें बहुत हेर-फेर आता है, यह बिल्कुल ठीक है तथा आलोचकोंने मनुष्य-जातिको नास्तिकताकी ओर खींचनेका प्रयत्न किया, यह भी ठीक है। भगवान्‌की माया दुस्तर है, यह भी आपका कहना ठीक है। कुछ महानुभावोंने जो इसका उत्तर कल्पभेदसे बताया, उनका कहना भी निराधार नहीं है।

आपने इस विषयमें यह शङ्का की कि यदि कल्प और युगका

भेद है तो उनके पूर्वजों एवं अन्य परिजनोंमें भेद क्यों नहीं हुआ सो उन सबमें भी भेद हुआ है, नामभेद कम है, पर व्यक्तिभेद बहुत है। रामका अवतार प्रत्येक त्रेतायुगमें हो यह कोई निश्चित नहीं है, परंतु बहुत-से त्रेतायुगोंमें रामका अवतार हुआ हो और उनकी कथाओंका मिश्रण हो गया हो, इसमें भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तुलसीदासजीने तो स्पष्ट ही कहा है कि मैंने यह कथा भिन्न-भिन्न पुराणोंमेंसे संकलित करके लिखी है, अतः इसे सुनकर किसीको आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार अपनी-अपनी रुचिके अनुसार पूर्वके कवियोंने ये कथाप्रसंग लिखे हों और रुचिभेदके अनुसार कथाभेद हो गया हो तो ऐसा होना भी असम्भव नहीं है।

भागवतमें चौबीस अवतारोंके वर्णनमें व्यासावतारका वर्णन तो कृष्णावतारके समय आता है और शान्तनुकी स्त्री सत्यवतीकी कुमारी-अवस्थामें, जब उसका नाम मत्स्यगन्धा था, पराशरजीके सकाशसे वेदव्यासजीका जन्म हुआ था। रामावतारसे पहले जो यह कथा आती है कि व्यासजीके भेजे हुए शुकदेवजी जनकके यहाँ गये हैं, वहाँ व्यास-जन्मकी कथा किस प्रकार आती है, आपको मालूम हो तो लिखें। इससे यह तो पता लग ही जाता है कि त्रेताके और द्वापरके व्यासजी अलग-अलग थे।

महाभारतमें जो परशुरामद्वारा सर्वस्व-दानकी कथा है, वह किस कालकी और कहाँकी है, यह देखना चाहिये। महाभारत, वनपर्वमें जो रामावतारकी भी कथा आती है, वह त्रेतायुगमें प्रकट हुए राम-

चन्द्रजीकी ही है, द्वापरकालका चरित्र नहीं है, त्रेतायुगकी घटनाका वर्णन है।

गुरु द्रोणाचार्यने परशुरामजीसे बाणविद्या सीखी, भीष्मजीने भी उनसे बाणविद्या सीखी, यह तो ठीक है; पर इससे उन्होंने जो बहुत पहले इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था और पृथ्वीको दानमें दे दिया था, उससे कोई विरोध नहीं है। उन्होंने जो कश्यपजीको पृथ्वीका दान किया था, यह घटना रामावतारके भी पहलेकी है। उसका उल्लेख महाभारतमें होनेसे वह द्वापरकी घटना नहीं हो जाती।

भगवान् रामके विवाहके बाद परशुरामजी तपके लिये महेन्द्रा-चलपर चले गये थे, इसमें भी कोई विरोध नहीं है; क्योंकि उनके सर्वस्व-दानवाली घटना तो उसके भी पहलेकी है।

रामचरितमानसमें जो सतीके सीताका रूप बनानेकी कथा है वह बहुत पुरानी कथा है—यह वहाँके वर्णनसे ही स्पष्ट है। वर्तमान कलियुगके पहले जो द्वापर और त्रेतायुग हुए हैं, उनकी वह कथा नहीं है; क्योंकि उसके बाद तो शिवजीकी समाधि बहुत कालतक रही। फिर सतीका जन्म पार्वतीके रूपमें हुआ, शिवजीसे उसका विवाह हुआ। उसके बाद काकभुशुण्डिका प्रसङ्ग आरम्भ करके शिवजीने रामकथा पार्वतीको सुनायी। काकभुशुण्डिको कितने कल्प बीत चुके, इन सब बातोंसे सत्ययुगमें सतीका दग्ध होना विरुद्ध नहीं पड़ता; क्योंकि त्रेताके बाद द्वापर, कलियुग व्यतीत होनेपर जो सत्ययुग आया, उसमें सती दग्ध हुई हैं, यह भी वहाँके प्रसंगसे स्पष्ट होता है।

अन्तमें आपने लिखा कि वर्तमान युगमें कई ऐसे भक्त हो चुके हैं तथा अभी भी मौजूद हैं जिनको भगवान्‌के दर्शनोंका अवसर प्राप्त हुआ है तो क्या वे लोग इन प्रश्नोंका सही उत्तर उनसे प्राप्त नहीं कर सकते ? सो इसका उत्तर कौन दे ? मेरी समझमें यह आता है कि जिनको भगवान्‌की मधुर-मूर्तिका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, वे तो उनके प्रेममें इतने मुग्ध हो जाते हैं कि उनके मनमें तो ऐसी शंकाएँ पैदा ही नहीं होतीं, फिर पूछे कौन ?

जो लोग ऐसा दावा करते हैं कि अमुक देवताको मैंने वशमें कर लिया है, उनमें अधिक लोग तो ठग होते हैं, जो भोले भाइयों-को भ्रममें डालकर ठगते रहते हैं। इसके सिवा जो देवता मनुष्यके वशमें हो जाता है, वह बेचारा इन प्रश्नोंका उत्तर ही क्या देगा ? उसको पता ही क्या ? क्योंकि वह सर्वज्ञ तो होता ही नहीं; पितरोंकी सामर्थ्य तो देवताओंकी अपेक्षा बहुत कम होती है।

---

[२८]

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था। उत्तर देनेमें विलम्ब हो गया, सो किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये।

(१) मनुष्य-शरीर मिलना बड़ा कठिन है—यह आपका लिखना ठीक है। इस बातको समझकर मनुष्यको चाहिये कि इस अमूल्य जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ न खोवे।

(२) आपकी परिस्थिति, अवस्था आदि सभी बातें मालूम,

हुई। यदि आपको घरका झगड़ा मिटाना है, सबके साथ प्रेम करना है तो आपको चाहिये कि किसीसे भी स्वार्थ सिद्ध करनेकी इच्छा न रक्खें। अपने बड़प्पनके अधिकारका अभिमान न रक्खें। घर-वालोंके जो मनकी बात धर्मानुकूल हो, जिसको आप कर सकते हों, उसे बड़े उत्साह, प्रेम और परिश्रमके साथ पूरी करते रहें। दूसरा कोई अपना कर्तव्य पालन करता है या नहीं, उसकी ओर न देखें। किसीके भी दोष न देखें। जो कोई आपके प्रतिकूल व्यवहार करे उसे भगवान्‌का कृपायुक्त मङ्गलमय विधान मानें, दूसरे किसीका भी अपराध न समझें। अपना कर्तव्य पालन करनेमें न तो आलस्य करें, न प्रमाद करें। ऐसा करनेसे आपका सबसे प्रेम हो सकता है। आसक्ति और ममता मिटकर परम शान्ति और परम सुख मिल सकते हैं।

(३) यदि आप अपना उद्धार चाहते हैं तो एकमात्र प्रभुको ही अपना मानना चाहिये। भगवान्‌पर दृढ़ विश्वास करके उनको अपना परम सुहृद् मानकर उनपर निर्भर हो जाना चाहिये तथा निरन्तर उनका ही भजन-स्मरण करना चाहिये एवं जो कुछ करें उसे उनका ही काम समझकर उनके आज्ञानुसार उन्हींकी प्रसन्नता-के लिये करते रहना चाहिये।

(४) पण्डितजीने आपको जो एक श्लोक लिखकर दिय है वह भी ठीक है। वह शिवकी उपासना करनेके लिये चल सकत है पर साथ ही यह विश्वास अवश्य होना चाहिये कि शिवजी हं सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ हैं; वे ही परब्रह्म परमात्मा हैं।

(५) आप कल्याणके ग्राहक हैं, रोज उसे पढ़ते हैं। अच्छी बात है। उसमें लिखी हुई बातोंमें जो आपको अच्छी लगें जिनपर आपकी श्रद्धा हो, जिनमें रुचि हो, जिन्हें आप पालन कर सकें, उन्हें काममें लावें और अपना जीवन साधनयुक्त बनावें। तभी मनुष्यजीवन सार्थक हो सकता है।

(६) भगवान्‌का भजन ध्रुवकी भाँति वनमें जाकर ही करना पड़े, ऐसी बात नहीं है। प्रह्लादकी भाँति घरमें रहकर भी भजन किया जा सकता है। भगवान्‌पर श्रद्धा-विश्वास हो और भजन करनेकी तीव्र इच्छा हो तो अम्बरीषकी भाँति घरमें रहकर भजन बड़ी सुगमतासे किया जा सकता है।

(७) सत्सङ्ग करनेके लिये पिताजीकी आज्ञा न मिलनेके कारण ऋषिकेश न आ सके, तो कोई बात नहीं। इसके लिये विचार नहीं करना चाहिये। जब उनकी आज्ञा मिले तभी आना चाहिये। नहीं तो, वहीं रहकर 'कल्याण' और अच्छी पुस्तकोंद्वारा ही सत्सङ्गका लाभ उठाना चाहिये।

(८) गया हुआ समय लौटकर नहीं आता, यह सर्वथा सत्य है।

(९) अपनेको नीचा समझना, किसी प्रकारके गुणका अभिमान न करना बहुत अच्छा है।

(१०) भगवान्‌की कृपा तो सदैव सबपर है, जो जितनी मानता है उतना लाभ उठा लेता है। ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ भगवान् और भगवान्‌की कृपा न हो।

(११) नाम-जप करते हुए भी भगवान्में प्रेम न होनेका कारण उनमें श्रद्धा तथा अपनत्वकी कमी है। आप भगवान्के अतिरिक्त संसारको और शरीरको अपना मानते हैं, इसी कारण संसारमें आसक्ति हो रही है और प्रेम बहुत जगह बँट गया है।

(१२) व्यर्थ स्वप्न न आवे, इसके लिये शयन करते समय भगवान्का भजन-स्मरण करते हुए शयन करना चाहिये।

(१३) गीता-पाठ, रामायण-पाठ आदि सभी नित्य-कर्म मन लगाकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक करना चाहिये।

(१४) आपको तीर्थ-भ्रमणसे शान्ति नहीं मिली, इसमें कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि एक तो आप घरवालोंसे पूछकर नहीं गये, दूसरे तीर्थोंमें श्रद्धाकी कमी रही। भगवान्का भजन-स्मरण श्रद्धा-प्रेमपूर्वक किया जाय और माता-पिताकी सेवा कर्तव्य समझकर आदरपूर्वक की जाय, बदलेमें उनसे किसी भी प्रकारकी कामना न की जाय तो शान्ति मिल सकती है।

(१५) हिमालय जानेपर भी आपका मन तो आपके साथ ही रहेगा। वहाँ भी सब बात आपके मनकी हो और कोई आपको नहीं सताये, ऐसी बात नहीं है। प्रतिकूलता सब जगह रहती ही है।

(१६) आपने फोटो मँगवाया, सो मैं अपना फोटो उतरवाकर किसीको नहीं भेजता; अतः इसके लिये कृपापूर्वक क्षमा करें।

(१७) भगवान्के दर्शन होनेमें विलम्ब हो रहा है, इसका एकमात्र कारण है श्रद्धा-प्रेमकी कमी। भगवान्के गुण-प्रभाव, तत्त्व-रहस्य-लीला-धामकी बातें सुनने और उनका मनन करनेसे ही

भगवान्‌में प्रेम हो सकता है। प्रेमसे ही भगवान् प्रकट होते हैं

हरि व्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रामचरित० बाल० १८४। ३)

भगवान्‌के जबतक दर्शन नहीं होते, तबतक कमी-ही-कमी है। भगवान्‌के दर्शन न हों तो हृदयमें व्याकुलता हो जानी चाहिये। जिस क्षण आपकी ऐसी स्थिति हो जायगी कि आपसे भगवान्‌के बिना रहा नहीं जा सकेगा, उसी क्षण भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं।

(१८) प्रतिदिन क्या दान करना चाहिये पूछा सो अपनी सामर्थ्यके अनुसार सात्त्विक दान करना चाहिये। गरीबों-अनाथों आदिकी निष्कामभावसे सेवा करना ही सबसे बड़ा दान है।

सबसे हरिस्मरण!

---

[२६]

सादर हरिस्मरणपूर्वक प्रणाम! आपका पत्र यथासमय मिल गया था। उत्तर देनेमें समयाभावके कारण विलम्ब हो गया, सो आपको किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। मेरे पत्रको पढ़कर आपको जो प्रसन्नता होती है, इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। आपके प्रेमभाव और प्रभुकी कृपासे ही ऐसा होता है। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

पूर्वजन्मोंके कर्म दो प्रकारके होते हैं—एक 'संचित' दूसरे 'प्रारब्ध'। 'संचित कर्म' उन कर्मोंको कहते हैं जिनका फल वर्तमान जन्मके लिये निश्चित नहीं हुआ है, अतः उनका नाश

करनेमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है । निष्काम कर्म और उपासनाके [द्वा]रा उनका नाश बड़ी सुगमतासे किया जा सकता है ।

'प्रारब्ध कर्म' उन कर्मोंको कहते हैं जिनके फलस्वरूप वर्तमान [श]रीर मिला है एवं जिनके अनुसार सुख-दुःखप्रद अनुकूल [औ]र प्रतिकूल पदार्थों, व्यक्तियों और परिस्थितियोंका संयोग-वियोग [नि]श्चित कर दिया गया है । इस विषयमें उनकी अवश्य ही [प्र]धानता है । वर्तमानमें हम जो अच्छे या बुरे कर्म करेंगे, उनमेंसे कोई-कोई उग्र कर्म तो तत्काल प्रारब्ध बनकर प्रारब्धमें सम्मिलित हो जाता है । शेष सब संचित कर्मोंके साथ सम्मिलित हो जाते हैं । इस प्रकार यह कर्मचक्र चलता रहता है ।

भगवान्‌का भजन-स्मरण इसलिये करना चाहिये कि संचित कर्म भस्म हो जायँ, फिर इस दुःखमय संसारमें न आना पड़े । नहीं तो, मरनेके बाद शूकर-कूकर आदि चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा ।

वर्तमान जन्ममें भगवान्‌पर निर्भर होकर भजन-स्मरण करनेसे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि घरमें दरिद्रता, वस्तुओंका अभाव, शरीरमें बीमारी, अपमान, निन्दा आदि प्रतिकूल घटनाओंके प्राप्त होनेपर भी वे हमारी शान्तिको भंग नहीं कर सकेंगी । हमारे लिये अनुकूलता और प्रतिकूलता समान हो सकती है । ऐसा हो जानेपर हमें कर्मके फलको बदलनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती, हमारा हृदय निरन्तर प्रभुके प्रेमसे भरा रह सकता है । इससे बढ़कर इस मनुष्य-जीवनका और लाभ हो ही क्या सकता है ।

निष्काम कर्म और ईश्वरभक्ति कभी भी बन्धनकारक न होते । निष्कामभावसे केवल भगवान्‌के आज्ञापालनके रूपमें, उन्ह की प्रसन्नताके लिये जो दूसरे देवताओंकी पूजा की जाती है उ उसके बदलेमें उनसे किसी भी प्रकारके फलकी आशा नहीं व जाती, वह तो भगवान्‌की ही पूजा है । उसका फल तो वही हो जो भगवान्‌की पूजा-भक्तिका होता है ।

'भगवान्‌की शरणागति किसको कहते हैं ?' इसका विस्तार युक्त लेख मेरे द्वारा लिखित तत्त्व-चिन्तामणि नामक पुस्तकमें देख सकते हैं । पत्रमें कहाँतक लिखा जाय । ईश्वरकी पूर्णतया शरण हो जानेवाला न तो किसी भी परिस्थितिमें घबराता है, न संसारी लोगोंसे मदद माँगता है, वह तो सदाके लिये निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है ।

---

[३०]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला । आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे नीचे लिखा जाता है—

(१) जीव और आत्मामें कोई वास्तविक भेद नहीं है । बद्ध-अवस्थामें उसे 'जीव' कहते हैं और मुक्तावस्थामें वह 'आत्मा' कहा जाता है । आत्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन ज्ञानस्वरूप हैं तथा अद्वैत-सिद्धान्तके अनुसार तो दोनों स्वरूपसे भी एक ही है । जो स्वयं प्रकाशस्वरूप हो और अन्यको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो, उसे 'चेतन' कहते हैं ।

(२) समाधि लगानेके अनेक प्रकार हैं, इसका विस्तार

योगदर्शनमें देखना चाहिये। यह बहुत लंबा विषय है, पत्रद्वारा नहीं बताया जा सकता।

(३) समाधिमें शरीर चेष्टारहित होनेपर भी उसमें प्राण, जीवात्मा और सूक्ष्मशरीरके तत्त्व विद्यमान रहते हैं, इसलिये शरीर नहीं सड़ता।

(४) मानसिक पूजामें समस्त सामग्री और पूजनकी क्रिया आदि मनसे संकल्पद्वारा ही की जाती है, यह तो सबकी ही समझमें आता है। इसमें पूछना क्या है, कुछ समझमें नहीं आया।

(५) आप सद्‌बुद्धि और सिद्धि चाहते हैं तथा इसी जीवनमें प्रभुदर्शन चाहते हैं, सो अच्छी बात है। सिद्धि भी दुखियोंका दुःख हरनेके लिये चाहते हैं, यह भी अच्छी बात है। आप जैसा बनना चाहते हैं उसके अनुसार साधन कीजिये, तब प्रभु-कृपासे सब कुछ हो सकता है।

आप शान्तिपूर्वक विचार करें कि आप अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये क्या साधन कर सकते हैं और क्या कर रहे हैं एवं इच्छा पूरी न होनेकी आपके मनमें वेदना है या नहीं। अगर है तो कितनी और किस दर्जेकी है। विचार करनेपर पता चलेगा कि आप अपनी शक्तिका प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये, ठीक-ठीक और पूरा नहीं करते। इसी कारण आपकी इच्छा पूर्ण होनेमें विलम्ब हो रहा है। मुझमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि मैं किसीको आशीर्वाद देकर उसकी इच्छाको पूरी कर दूँ। मैं तो समझता हूँ कि इच्छारहित होकर भगवान्‌की अनन्य भक्ति करना ही परम सिद्धिका

और भगवान्‌के दर्शन प्राप्त करनेका अमोघ उपाय है, जिस करनेमें आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

(६) आठ सिद्धियाँ इस प्रकार सुनी गयी हैं—अणि महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील अं खर्व—इस प्रकार ये नौ निधियोंके नाम सुने गये हैं। इनव विस्तार यहाँ समझाना बहुत कठिन है।

(७) आपके पिताजी 'आपको गीतापाठ नहीं करने दे और पूजा आदि साधनमें समय लगानेपर भी क्रोध करते हैं। इ विषयमें आपको सोचना चाहिये कि इसका कारण क्या है ! पिताजी आपका भला ही चाहते होंगे, बुरा नहीं; पिता तो आखि पिता ही ठहरे। वे अपने पुत्रका अहित क्यों चाहेंगे ? सम्भव है आप उनकी सेवा न करते हों या उनको इस बातका संदेह हो कि इधर लग जानेसे यह घर छोड़कर भाग न जाय या व्यापार वगैरहसे और घरके कामसे मन न चुराने लगे। इस प्रकारकी शंका यदि उनके मनमें हो तो बातचीत करके तथा अपने व्यवहार और आचरणद्वारा उसे दूर कर देना चाहिये। ऐसा करनेपर उनका मन बदल सकता है।

वे जो आपको झूठ बोलने, धोखाबाजी, बेईमानी और छल-कपट करनेके लिये बाध्य करते हैं तो बड़ी नम्रताके साथ विनयपूर्वक उनसे क्षमा माँगकर कहना चाहिये कि 'ऐसा करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है। मेरी समझमें ऐसा करनेमें न तो आपका हित है न मेरा

ही; अतः आप मेरा यह अपराध क्षमा करें जो इस विषयमें मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं कर रहा हूँ।' इसपर यदि वे बुरी-भली जबान कहें, गालियाँ दें, अपमान करें तो मनमें जरा भी क्रोध या दुःख नहीं करना चाहिये, हर्षपूर्वक सबको सहन करते जाना चाहिये। भक्त प्रह्लादकी भाँति दृढ़ रहना चाहिये। पिताजीकी शारीरिक सेवा, नमस्कार तथा जो धर्म और साधनके प्रतिकूल न हो, ऐसी आज्ञाका पालन बड़े आदर, प्रेम और प्रसन्नताके साथ करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे मेरा विश्वास है कि आपके पिताजीका स्वभाव बदल सकता है।

आप घरसे निकलकर न तो अपना ही सुधार कर सकेंगे और न अपने पिताजीका ही। मोह तो आपके अन्तःकरणमें है। वह तो आपके साथ, जहाँ आप जायँगे, वहीं रहेगा। घर छोड़नेसे तो मोहकी बेड़ी कटेगी नहीं और घरमें रहनेके कारण मजबूत नहीं होगी। उसका टूटना और मजबूत होना तो आपके साधनपर निर्भर है।

(८) यदि मनुष्य अपनी वस्तु किसी दुखीकी सहायतामें लगानेका संकल्प कर ले, परंतु उसके पहले ही उस दुखीकी जरूरत पूरी हो जाय, उसे उसकी आवश्यकता न रहे तो वह उस वस्तुका उपयोग दूसरे वैसे ही अभावग्रस्त दुखीके हितमें कर सकता है जिसे उसकी आवश्यकता हो, इसमें कोई हानि नहीं है। हाँ, जिसको देनेका पूर्वमें संकल्प किया गया था, उसे भी संतोष करा देना चाहिये।

(९) हरेक प्राणीमें प्रभुका निवास समझना भाव और

प्रेमकी बात है और सबके साथ वर्ण-आश्रमके अनुसार आच
करना यह व्यावहारिक क्रियाकी बात है। प्रेम और तात्त्विक दर्श
ही समता हो सकती है। व्यवहारमें अर्थात् क्रियामें भेद तो सब
करना ही पड़ता है, क्योंकि यह अनिवार्य और आवश्यक है
अपने शरीरके सब अङ्गोंके साथ हम समताका आचरण नहीं क
सकते, यद्यपि उसमें सर्वत्र हमारा आत्मा, प्राण, ममता और प्रे
समान है, पर वस्तुको ग्रहण हाथसे करेंगे, शरीरपर कोई संक
पड़ेगा तो रक्षाका काम हाथसे करेंगे, खानेका काम मुखसे करेंगे
देखनेका काम आँखसे करेंगे, मल-त्यागका काम गुदासे करेंगे
इत्यादि। सभी कामोंमें भेद करना ही पड़ेगा, इस भेदको कोई
मिटा नहीं सकता।

(१०) यज्ञोपवीतके बिना वैदिक मन्त्र और प्रणवके जपका अधिकार नहीं है। भगवान्‌के नामका जप किया जा सकता है; उसी प्रकार ॐकारको भी भगवान्‌का नाम मानकर कोई जप करे तो उसकी इच्छा है, किंतु शास्त्रकी ओरसे तो अधिकार नहीं है।

(११) नित्य-प्रति स्नान तो करना ही चाहिये, कपड़े भी धो लिये जायँ तो अच्छा ही है; क्योंकि सफाई भी पवित्रताका ही अङ्ग है। कम-से-कम धोती तो अवश्य धोयी ही जानी चाहिये।

---

[३१]

सादर हरिस्मरण। आपका पत्र यथासमय मिल गया था, समय कम मिलनेके कारण उत्तरमें विलम्ब प्रायः हो ही जाता है।

आपने अपने पुत्रके स्वभाव, आचरण और पढ़ाई वगैरहके

समाचार लिखे; उनको पढ़ लिया, पर मैं ऐसा कोई भी मन्त्र, तन्त्र या औषध नहीं जानता जिसके प्रयोगसे आपके लड़केका स्वभाव बदल दिया जा सके।

अतः मेरी समझमें उसके लिये चिन्ता और दुःख करनेमें तो कोई लाभ नहीं है। उसमें जो आपलोगोंकी मोह-ममता है, उसे हटाकर उसे भगवान्‌की वस्तु मानना चाहिये तथा उसके सुधारका भार भी विश्वासपूर्वक भगवान्‌पर ही छोड़ देना चाहिये। ऐसा करनेपर आपलोगोंका और उसका भी हित हो सकता है।

आपने पूरी गीता याद कर ली, यह तो बहुत ही अच्छी बात है। अब उसमेंसे जो श्लोक आपको रुचिकर हों और जिनके अनुसार जीवन बनाना आपको सुगम प्रतीत होता हो, ऐसे श्लोकोंको चुनकर उनके अनुसार जीवन बनानेकी चेष्टा प्रेम और विश्वासपूर्वक करनी चाहिये।

---

[३२]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार लिखे सो अवगत किये। आपने हमारे नामके आगे परम पूज्य श्रीश्री आदि लिखा एवं पत्रमें जगह-जगह प्रशंसाके शब्द लिखे, सो इस प्रकार लिखकर मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये। मैं तो साधारण आदमी हूँ। परम पूज्य एवं प्रशंसाके लायक तो एकमात्र भगवान् ही हैं, वे ही श्रद्धाके योग्य हैं।

आप 'तत्त्व-चिन्तामणि'का प्रेमसे पाठ करते हैं, सो आपके

भावकी बात है। आप स्थूल बुद्धिके कारण उसे समझ नहीं प
सो जो बात आपके समझमें नहीं आवे, उसे बार-बार पढ़ना चाहि
इस प्रकार करनेसे समझमें आ सकती है। उसमें जो बातें हैं, उन
समझकर काममें भी लानेकी कोशिश करनी चाहिये।

आपने मुझे दया करके संसारसागरसे पार करनेके लि
लिखा, सो यह मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहरकी बात है। भगवान्क
दयासे ही संसारसागरसे पार उतरा जा सकता है। भगवान्क
दया सबपर है ही। बस, माननेभरकी देर है। उनकी दया मान
कर उनके शरण हो जाना चाहिये।

आपने गलती क्षमा करनेके लिये लिखा सो हमारी समझमें त
आपकी कोई गलती नहीं है। जब गलती है ही नहीं, तब फिर
क्षमा करनेकी कोई बात ही नहीं उठती। आपने लिखा कि कभी
भगवत्कृपा होगी तो लिखूँगा सो ठीक है। आप जब चाहें, तब
लिख सकते हैं। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं—

×××जहाँ पूजा और मान-बड़ाईसे सम्बन्ध है वहाँ खतरा
ही समझना चाहिये। गुरु बनाये बिना मुक्ति होती ही न हो,
ऐसी कोई बात नहीं है। बिना गुरुके भी मुक्ति हो सकती है।
आजकल अच्छे और असली गुरु मिलने बहुत ही कठिन हैं। यदि
सौभाग्यवश मिल भी जायँ तो उनकी पहचान करना बड़ा ही कठिन
है। सबसे उत्तम तो यही है कि भगवान्‌को परम गुरु मानकर
उनका निष्कामभावसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप-ध्यान और पूजा-पाठ
करना चाहिये। वे स्वयं ही ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। यदि कोई

।च्छे गुरु मिलें तो उन्हें अवश्य ही गुरु बना लेना चाहिये। महा-
ारतमें एकलव्य भीलकी कथा आती है। उसने द्रोणाचार्यजीको
ुरु मानकर उनकी मूर्तिसे अस्त्र-शस्त्रकी विद्या प्राप्त की थी, उसी
कार आप भी किसी योग्य पुरुषको गुरु मानकर या बनाकर मुक्तिका
ाधन कर सकते हैं।

दोनों समय संध्या और गायत्री-मन्त्रका जप आपको अवश्य
करना चाहिये। आप संस्कृत नहीं जानते हैं सो तो ठीक है।
ंध्याके तो थोड़े-से मन्त्र हैं, किसी जानकार विद्वान्से उच्चारण
ीखकर याद कर लेने चाहिये। संस्कृत न पढ़े रहनेके कारण
ामूली गलती भी हो जाय तो कोई आपत्ति नहीं है। निष्काम-
भावसे करनेवालोंके लिये कोई हानिकी बात नहीं है। अशुद्ध
उच्चारण करनेपर हानि तो उनको होती है, जो सकामभावसे करते
हैं। निष्कामभाववालोंके लिये कोई डरकी बात नहीं है। भगवान्के
लिये हृदयमें रोना तो बहुत ही अच्छा है। भगवान्के सामने करुण-
भावसे रो-रोकर उनसे अपने उद्धारकी बात पूछनी चाहिये। इस
प्रकार पूछनेसे भगवान् हृदयमें प्रेरणा कर दिया करते हैं। उसीको
भगवान्का आदेश मानकर करना चाहिये। नित्यकर्ममें संध्याके
साथ गीता-पाठ करना बहुत अच्छा है। संस्कृतके श्लोक न पढ़
सकें तो केवल भाषा ही पढ़ सकते हैं। रामायण (रामचरितमानस)
तो हिंदीमें ही है। उसके दोहे-चौपाइयोंका पाठ कर लेना चाहिये।
यदि रामायणके दोहा-चौपाई भी आप न पढ़ सकें तो अर्थ ही पढ़
लेना चाहिये।

आपने चाय-दूध आदिकी दूकान कर रक्खी है और पाँच बजेसे रातको बारह बजेतक दूकान खोलते हैं, सो इ समयतक दूकान खोलना ठीक नहीं है । दूकान करनेवालोंके सबसे खास बात यह है कि सबके साथ सम और व्यवहार करना चाहिये । आपके घरवाले तामसी भो करते हैं और नास्तिक हैं, उन लोगोंने आपको अलग कर दि सो इसे भगवान्‌की विशेष कृपा माननी चाहिये जो आपको संगसे बचा लिया, नहीं तो, पता नहीं, आपकी क्या दशा होत इतना समझनेपर भी उनसे घृणा नहीं करनी चाहिये । अप ओरसे तो ऐसी ही चेष्टा करनी चाहिये कि जिससे उनका सुधार होकर उद्धार हो सके । दूकानमें काम थोड़ा ही होने कारण नौकर न रखकर आप स्वयं ही जूँठे गिलास आदि अपन हाथोंसे साफ करते हैं, सो बहुत ही उत्तम बात है । यह भ भगवान्‌की बड़ी कृपा है जो आपको ऐसा सेवाका काम दिया है दूकानको भगवान्‌की दूकान समझकर एवं अपनेको उनका सेवक समझकर भगवान्‌की दूकानमें जैसा काम होना चाहिये, वैसा ही सत्य और सम व्यवहार रखना चाहिये । इस प्रकार स्वार्थ-त्यागपूर्वक करनेसे काम भी साधन ही बन सकता है । काम अधिक बढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जितना काम है उससे जनताकी अधिकाधिक सेवा करनेकी कोशिश रखनी चाहिये ।

दिनमें आपको पुस्तक पढ़नेका समय भी मिल जाता है, सो बहुत उत्तम है । उस समय गीताप्रेसकी पुस्तकें पढ़नी चाहिये ।

आपके भगवान् श्रीकृष्णका इष्ट है एवं भजन-कीर्तनमें रुचि है, सो अच्छी बात है। आपको——

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥

——इसका कीर्तन करना चाहिये। यही आपके लिये सर्वोत्तम है।

आपके सिरपर ऋण है, इसकी चिन्ता रहनेके कारण भगवत्कीर्तन आप नहीं कर पाते हैं, सो अवगत किया। चिन्ता तो नहीं करनी चाहिये; खर्च कम-से-कम करके ऋण उतारनेकी कोशिश करनी चाहिये। खर्च करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है, आयमें ही परतन्त्र है।

कीर्तन और सत्सङ्गमें जानेका आपको समय नहीं मिलता तो इसके लिये दुःख नहीं करना चाहिये। गीताप्रेसकी तथा और भी धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन भी सत्सङ्ग ही है। कीर्तन आप अपनी इच्छाके अनुसार घरमें भी कर सकते हैं।

आप अष्टमीका व्रत करते हैं, सो बहुत अच्छी बात है। व्रतके दिन फल-दूध आदि जो भी लिया जाय, वह एक समय ही लिया जाय तो और भी ठीक है।

प्रभुमें प्रेमभरी भक्ति हो एवं उनकी प्राप्ति हो, इसका उपाय आपने पूछा सो बहुत अच्छी बात है। इसी इच्छाको खूब बढ़ाना चाहिये। भगवान्‌की प्राप्तिके बिना एक क्षण भी रहा न जा सके तो भगवान्‌की प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है। भगवान् तो भक्तोंसे मिलनेके लिये सर्वथा उत्सुक हैं। उनसे मिलनेकी इच्छा करनेवालोंकी ही कमी है। सबसे यथायोग्य।

[३३]

सविनय प्रणाम। आपका पत्र मिला। आपने मेरे लिये श्रद्धेय ए अपने लिये अकिंचन दास आदि शब्दोंका प्रयोग किया, सो इ प्रकार लिखकर मुझे संकोचमें नहीं डालना चाहिये। आप ब्राह्म होनेके नाते हमारे लिये पूज्य हैं। मैं तो साधारण मनुष्य हूँ।

आपका परिचय माल्म हुआ। गंदे उपन्यास, नाटक तथ कहानी आदिकी पुस्तकें पढ़नेसे कोई लाभ नहीं है, बल्कि नुकसान ही-नुकसान है; अतः ऐसी पुस्तकें कभी नहीं पढ़नी चाहिये। आप 'कल्याण'में प्रकाशित परमार्थ-पत्रावली तथा 'शिव' की बातों को पढ़ते हैं, सो बहुत अच्छी बात है। अच्छी पुस्तकें पढ़कर सात्त्विक जीवन व्यतीत करनेकी आपकी इच्छा है सो बहुत ही उत्तम है। इसके लिये 'तत्त्व-चिन्तामणि' सातों भाग, गीता-तत्त्वविवेचनी तथा और भी, गीताप्रेससे प्रकाशित भक्त-गाथाओंकी पुस्तकें पढ़नी चाहिये एवं उनमें लिखी बातोंके अनुसार जीवन बनानेकी कोशिश करनी चाहिये।

आपने मनको वशमें न कर सकनेकी बात लिखी, सो ठीक है। 'मनको वशमें करनेके उपाय' नामक एक छोटी-सी पुस्तक भी गीताप्रेससे प्रकाशित है। उसे मँगाकर पढ़ना चाहिये और उसमेंसे जो साधन आपको रुचिकर हो, उसे करना चाहिये। उससे आपको लाभ हो सकता है। आपको अपने मनकी प्रेरणाके अनुसार नहीं चलना चाहिये, अपनी बुद्धिसे काम लेनी चाहिये।

मन लोभी, मन लालची, मन चंचल, मन चोर।
मनके मते न चालिये पलक पलक मन और॥

मनकी प्रेरणा तो पतन करनेवाली है। मनको वशमें लिये गीता अध्याय ६ श्लोक ३५ और ३६ की तत्त्वविवेचनी पढ़कर उसके अनुसार अभ्यास और वैराग्यका साधन करना चाहिये। साधनके समय मन उपद्रव करता है, ध्यान नहीं करने देता, सो अवगत किया। जहाँ-जहाँ भी मन जाय, वहाँ-वहाँसे हटाकर बारंबार उसको भगवान्‌के ध्यानमें लगाना चाहिये (गीता ६। २६ देखें)। दूसरा उपाय यह भी है कि मन जहाँ भी जाय, वहाँ भगवान्‌का ही दर्शन करना चाहिये। संसारमें आसक्ति और प्रेम होनेके कारण ही संसारमें मन जाता है। अतः संसारको दुःखरूप क्षणभङ्गुर अनित्य समझकर उससे वैराग्य एवं भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये। अभ्यास और वैराग्य ही मनको वशमें करनेके उपाय हैं। इस प्रकार करनेसे भगवान्‌के ध्यानमें मन लग सकता है। यह जो आप समझते हैं कि मनको वशमें किये बिना काम-क्रोध-मद-लोभको जीतना सम्भव नहीं, सो ठीक है। भगवान्‌की शरण लेनेसे ये सभी जीते जा सकते हैं। अनिच्छा या परेच्छासे जो भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त हो उसे भगवान्‌का मङ्गलमय विधान मानना चाहिये और किसी भी बातकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। यह शरणका ही एक प्रधान अङ्ग है।

धीरे-धीरे मन दुष्कर्मोंको छोड़ दे इसके लिये आपने किये जानेवाले दुर्गुणोंको डायरीमें नोट करना शुरू कर दिया, सो ठीक है। जो दुर्गुण आपकी शक्ति और सामर्थ्यसे समाप्त न हो सके,

उनके लिये रो-रोकर करुणभावसे भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है! मन वशमें हो एवं भगवान्‌में ध्यान लगे, इसके लिये भी भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। चोरी-व्यभिचार आप नहीं करते, सो अच्छी बात है। पर मन उनका चिन्तन करता है, यह ठीक नहीं है। भगवान्‌का चिन्तन करना चाहिये, फिर सब दुर्गुण अपने-आप ही छूट सकते हैं। आपको गीता अध्याय ६ श्लोक २४, २५, २६ के अनुसार साधन करना चाहिये।

प्रत्येक पत्रका उत्तर देनेकी हमारी चेष्टा रहती है, अतः कोई बात पूछनी हो तो संकोच नहीं करना चाहिये। हमारे पास पत्र बहुत आते हैं। अतः विस्तृत पत्रोंका उत्तर देनेमें विलम्ब हो जाया करता है। इसलिये सार-सार बातें ही पूछनी चाहिये। सबसे यथायोग्य।

---

[३४]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी शङ्काओंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

१—आपने अपनेमें क्रोध आने तथा उससे होनेवाले परिणामकी बात लिखी, सो मालूम की। क्रोध न आवे, इसके लिये ये उपाय हैं—

(क) अनिच्छा या परेच्छासे अपने मनके प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर ही प्रायः क्रोध आया करता है, इसलिये जो कुछ भी

आकर प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का मङ्गलमय विधान समझ लेना चाहिये।

(ख) जिसपर क्रोध आवे, उसमें भगवद्बुद्धि कर लेनी चाहिये। इस प्रकार करनेसे भी क्रोध नहीं आ सकता।

क्रोध शान्त होनेपर हृदयमें शोक और पश्चात्ताप होता है, सो अच्छी बात है। जिसपर क्रोध आवे, उससे क्षमा-प्रार्थना करना भी बहुत उत्तम है। भविष्यके लिये किसी भी प्राणीपर क्रोध न करनेका भी दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये। इस प्रकार करनेसे धीरे-धीरे क्रोध आनेका स्वभाव बदल सकता है।

२—भगवान्‌का भजन सूर्योदयके पूर्व और सूर्यास्तके पूर्व प्रतिदिन नियमितरूपसे अवश्य करना चाहिये। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय ही भगवान्‌का स्मरण रखना चाहिये। रातको शयन करते समय भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभावको याद करते हुए ही सोना चाहिये। इस प्रकार करनेसे शयनकाल भी साधनकाल ही हो सकता है।

सुबह-शाम भजन करनेसे पूर्व स्नान करना और कपड़े बदलना अच्छा है। सुबह तो अवश्य ही स्नान करना चाहिये। शामको हाथ-पैर-मुँह धोकर भी भजन-साधन किया जा सकता है। केवल शुद्धिकी दृष्टिसे ही नहीं, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी शरीरके लिये यह बहुत ही लाभदायक है। भगवान्‌की आराधना हर अवस्था एवं हर परिस्थितिमें की जा सकती है, यह भी मानना ठीक है।

३—संसारके बुरे वातावरणसे घृणा होना तो अच्छा ही है, किंतु संसारके मनुष्योंसे घृणा करना या उनमें दोष-बुद्धि करना

कैसे सिद्ध की जा सकती है। हाँ, यदि कोई मनुष्य सत्-शास्त्र और सत्पुरुषोंकी वाणीपर श्रद्धा-विश्वास करके मान लेता है तो भगवान्‌की कृपासे उसकी समझमें भी आ जाता है।

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'

(रामचरित० अयोध्या० १२६। २)

(२) आपने लिखा कि ऐसा पता चलता है कि श्रीराम और श्रीकृष्ण महापुरुष थे, साक्षात् ईश्वर नहीं; तो यह पता भी आपको किसीकी बात मान लेनेसे ही चला होगा। नहीं तो, आप ही बताइये कि श्रीराम और श्रीकृष्ण कोई ऐतिहासिक महापुरुष हुए थे या नहीं; इसका ही क्या प्रमाण है ? जिन ग्रन्थोंमें उनके चरित्रों-का वर्णन है, उनको यदि कपोलकल्पित मान लिया जाय तो फिर उनको महापुरुष मानकर उनका अस्तित्व माननेके लिये भी तो कोई आधार नहीं रह जाता। ऐसा कोई भी प्राचीन आर्ष ग्रन्थ नहीं है, जिसमें उनके चरित्रका तो वर्णन हो और उनको ईश्वरका अवतार न माना हो। इस परिस्थितिमें 'ईश्वर मनुष्यरूपमें अवतार लेते हैं, यह बात पूर्ण सत्य नहीं है,' आपका यह कहना एक साहसमात्र नहीं तो क्या है, जिसके लिये यह कहा जा सके कि वह अमुक काम नहीं कर सकता, वह ईश्वर ही कैसा ?

(३) आपने महात्मा गांधीके कथनको उद्धृत किया सो उनका कहना किस अभिप्रायसे है, यह समझना कठिन है। साथ ही वे यह भी स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि मुझे अभी सत्यकी उपलब्धि नहीं हुई है, मैं उसकी खोजमें हूँ। इस परिस्थितिमें हम केवल उनकी ही बात मानें, तुलसीदासजी-जैसे संतोंकी बात न मानें,

जिनको स्वयं गांधीजीने बड़े आदरके साथ माना है—यह कहाँतक उचित है, आप विचार करें ।

(४) कबीरपंथी कबीरजीको साक्षात परब्रह्म मानते हैं, यह तो उनकी श्रद्धाकी बात है; पर स्वयं कबीरजीने तो अपनी वाणीमें यह बात कहीं नहीं कही कि मैं ईश्वर हूँ, तुम मेरी पूजा करो इत्यादि ।

(५) आपने लिखा कि इसी प्रकार सनातनधर्ममें राम-कृष्णको ईश्वर और साक्षात् ब्रह्म मान लिया जाता है, पर ऐसी बात होती तो उस धर्मका नाम ही सनातन नहीं होता । सनातन उसे कहते हैं, जो अनादि हो, सदासे हो, अन्य मत-मतान्तरोंकी भाँति मनुष्यका चलाया हुआ न हो । फिर आपने श्रीराम और श्रीकृष्णको ईश्वर न मानकर महापुरुष किस आधारपर मान लिया, यह समझमें नहीं आया ।

(६) श्रीगांधीजीने जो यह लिखा कि मेरा राम दशरथनन्दन होते हुए भी साक्षात् ब्रह्म है, इसका भावार्थ आपने मनकी बातको पुष्ट करनेके लिये जो लगाया, वह ठीक नहीं । अर्थ जो उनकी मान्यतामें है, वही उनकी दृष्टिसे ठीक है ।

कोई यदि यह कहे कि गीताकी कथामें वर्णित घटना सच्ची घटना नहीं है, उपदेशके लिये लिखी गयी है तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसमें जो उपदेश भगवान् श्रीकृष्णने दिया है, वह भी श्रीकृष्णकी वाणी नहीं है, किसी कविकी कल्पनामात्र है और वह कवि मिथ्यावादी है । इस परिस्थितिमें गीताके उपदेशका क्या महत्त्व रह जाता है, इसपर आप गम्भीरतासे विचार करें । क्या आप

श्रीशङ्कराचार्यजीको भी मिथ्यावादी मानेंगे, जिन्होंने अपने भा
भूमिकामें स्पष्ट लिखा है कि जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और
करनेवाले स्वयं परमेश्वरने श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होकर गीताका उप
अर्जुनको दिया और सर्वज्ञ भगवान् वेदव्यासजीने उस उपदेश
ज्यों-का-त्यों ७०० श्लोकोंमें छन्दोबद्ध करके लोगोंके सामने रखा ।

(७) आपने लिखा कि पुराणोंकी कथाओंमें मुझे कोई ऐ
हासिक सत्य नहीं दिखायी पड़ता, सो हमलोगोंकी दृष्टि ही इ
निर्मल और तीक्ष्ण कहाँ है, जिसके द्वारा हम पुराणोंकी कथा
रहस्य ठीक-ठीक समझ सकें । यह हो सकता है कि किसी तत्त्व
समझानेके लिये उसका वर्णन कथाके रूपमें किया गया हो ।
साथ ही यह बात भी है कि वह ऐतिहासिक घटना भी हो सक
है । पुराणोंकी कथाएँ बहुत ही प्राचीन हैं, स्मरणशक्तिके परिवर्तन
उनमें हेर-फेर हुआ हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; पर उनक
कपोलकल्पित मानना तो सर्वथा अनुचित है ।

(८) आपने इस विषयमें मेरे विचार प्रकट करनेके लि
लिखा, सो मेरी मान्यताके अनुसार भगवान् श्रीराम और भगवा
श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरके ही अवतार थे (गीता ४ । ६
और १० । १२ में देखें) । उनके चरित्रोंकी कथाएँ जो ऋषिप्रणीत
आर्ष ग्रन्थोंमें हैं, सर्वथा सत्य हैं, कपोलकल्पित नहीं हैं । यदि कहं
उन कथाओंका भाव ठीक समझमें न आये, कोई बात धर्मके प्रतिकूल
प्रतीत होती हो तो मैं यह मानकर उसे छोड़ देता हूँ कि यह बात
मेरी समझमें नहीं आयी, इसका आशय कोई दूसरा होगा । शास्त्र

तो समुद्र है, उसका समस्त जल किसी घड़ेमें कैसे भरा जा सकता है ?

पुराणोंकी कथाओंके विषयमें भी ऐसी ही बात है, वे कपोल-ल्पित नहीं हैं। अधिकांश कथाएँ वैदिक ब्राह्मण-ग्रन्थोंसे और दकी विभिन्न शाखाओंसे ही ली गयी हैं। पर सब जगह उनका ाशय ठीक समझमें नहीं आता—यह मैं अपनी कमजोरी मानता हूँ; क्योंकि मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। ग्रन्थोंको मिथ्या या कपोलकल्पित ानना तो मैं अपने लिये सर्वथा ही अनुचित समझता हूँ।

(९) वोटमें तो वही बात कहनी चाहिये, जो सत्य हो; पर जिसका निर्णय नहीं हो सके, वहाँ यही कहना सत्य है कि मैं अभी इसका निर्णय नहीं कर सका, खोज कर रहा हूँ। यदि यह कहें कि राम-कृष्ण अवतार नहीं थे तो यह भी सत्य नहीं; क्योंकि आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ नहीं हैं। यदि यह कहें कि अवतार है तो यह इसलिये सत्य नहीं कि आपको स्वयं विश्वास नहीं।

(१०) रुपये उधार उस व्यक्तिको कदापि नहीं देने चाहिये जो उनका दुरुपयोग करता हो। उसे न देना कोई शत्रुता नहीं है। यदि उसको दुःख या क्रोध होता है तो यह उसकी बेसमझी है। अतः इससे डरना नहीं चाहिये। साफ-साफ कह देना चाहिये कि आपको उधार देनेकी हमारी इच्छा नहीं है।

---

[३६]

सादर हरिस्मरण और प्रणाम। आपका पत्र मिला, समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

जा सकता है । जीवात्मा ईश्वरकी ही चेतन परा प्रकृति है । (गी
७ । ५) अर्थात् उसका स्वभाव है (गीता ८ । ३), अ
ईश्वरका ही अंश है; उससे भिन्न कोई दूसरी वस्तु जीवात्मा न
है । ईश्वर और जीवके स्वरूप और सम्बन्धका जो तत्त्व है, व
मन-बुद्धि और वाणीका विषय नहीं है; अतः उसे कैसे समझाय
जाय । यह तो भगवान्‌की कृपासे ही समझमें आ सकता है, पहल
तो विश्वासपूर्वक मानना ही पड़ता है; क्योंकि वैसा कोई उदाहरण
नहीं है, जिसके द्वारा ईश्वर और जीवके स्वरूप और सम्बन्धक
समझाया जा सके ।

---

[३७]

सादर प्रणाम । आपका पत्र समयपर मिल गया था, परंतु पत्र बड़ा होनेके कारण और समय कम मिलनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ । आपने अपनी आयु तथा परिस्थिति लिखी सो ज्ञात हुई । आपने जो-जो बातें पूछी हैं, उनका उत्तर क्रमसे लिखा जाता है ।

आपको यदि इस बातकी चिन्ता है कि मृत्यु निकट है तो अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है । भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये तो एक क्षण भी काफी है । भगवान्‌के लिये बहुत समयतक साधन करनेकी आवश्यकता नहीं, उन्हें तो श्रद्धा और प्रेम चाहिये; वह जिस क्षण पूर्ण हो जायगा, उसी क्षण भगवान् प्रत्यक्ष हो जायँगे ।

मान और अपमानको समान समझ लेनेपर अथवा भगवान्‌का विधान या कर्मोंका फल समझ लेनेपर राग-द्वेष और अपमानजनित सभी दुःखोंसे छुटकारा मिल सकता है ।

छोटे लड़केमें स्नेह होना स्वाभाविक-सा हो रहा है, लिखा सो यह मोहजाल है; आसक्ति न छोटेमें ही होनी अच्छी है और न बड़ेमें ही। स्नेह तो एकमात्र भगवान्‌में ही होना चाहिये। धन, परिवार और पुत्र-पौत्र आदिका स्नेह तो दुःखका ही कारण है।

दुःख-सुखके भोग ही भगवान्‌के विधानसे होते हैं; पापकर्म तो मनुष्य आसक्तिवश करता है, वह भगवान्‌का विधान नहीं है।

सच्चा वैष्णव तो वही है, जो भगवान् विष्णुका प्रेमी भक्त है। उसकी ही महिमा शास्त्रोंमें गायी गयी है। आपने मन्त्र लिया, यह तो ठीक है; परंतु अब भगवान्‌में अनन्य प्रेम करना चाहिये। सब जगह्से प्रेम हटाकर केवल भगवान्‌का सच्चा भक्त और सच्चा वैष्णव बनना चाहिये।

भगवान्‌के नाम-जपपर दृढ़ता अवश्य रखनी चाहिये। नाम-जप श्रद्धाप्रेमपूर्वक निरन्तर होता रहे, इसके लिये विशेष सावधान रहना चाहिये। नाम जप बहुत ही उत्तम साधन है। मन तो एक ही है, परंतु इसकी शाखाएँ बहुत हैं; यह बड़ा चञ्चल है, एक ही क्षणमें अनेक विषयोंका चिन्तन कर लेता है। इसे सांसारिक चिन्तनसे हटाकर भगवान्‌के गुण, प्रभाव और स्वरूपके चिन्तनमें लगाना चाहिये।

यह मन भोगोंमें आसक्ति होनेके कारण ही उनकी ओर दौड़ता है अतः भोगोंको अनित्य और दुःखरूप समझकर उधरसे प्रेम हटाना चाहिये और भगवान्‌में प्रेमपूर्वक मनको लगाना चाहिये। यही इसकी शान्तिका उत्तम उपाय शास्त्रोंमें पाया जाता है।

नहीं मानना चाहिये । प्रत्येक व्यवहारमें उनका आदर रहना चाहिये हृदयमें उनके प्रति प्रेम रहना चाहिये । उनके अवगुणोंको देखव उनमें तुच्छभाव करना और अपनेमें अच्छेपनका अभिमान कर बहुत बुरा है ।

आप पवित्रतासे बनाया हुआ प्रसाद पाती हैं, यह तो अच्छ बात है । पर इसके लिये दूसरोंको कष्ट नहीं देना चाहिये ए अपनेमें इस गुणका अभिमान करके दूसरोंको तुच्छबुद्धिसे नहं देखना चाहिये । सम्भव है ऐसा करनेसे आपके पतिदेव रुष्ट नहीं होंगे ।

आप अपनी गलतियोंका सुधार कर लें तो शान्ति अवश्य मिल सकती है । अशान्तिका कारण दूसरा कोई नहीं होता—यह निश्चित सिद्धान्त है ।

आपने अपनी दिनचर्या लिखी सो ठीक है; जप, पूजा, पाठ आदि करते समय अपने इष्टकी स्मृति अवश्य रखनी चाहिये । घरके कामको, पतिकी सेवाको और शारीरिक क्रियाको—सबको भगवान्का ही काम समझकर उनकी प्रसन्नताके लिये ही करना चाहिये ।

प्रभु सब कुछ सुनते हैं, उनसे कोई बात छिपी नहीं है—यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिये । वे जो कुछ विधान करते हैं, ठीक करते हैं । उसीमें सबका हित है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ।

आपके अन्य प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं—

१–प्रातः उठते ही जो दैनिक पानी पिया जाता है, वह व्रतके दिन भी पीनेमें कोई अड़चन नहीं है ।

२—जो केला, कद्दू खाना छोड़ देते हैं, यह उनके लिये उचित ही होगा। छोड़नेमें कोई हानि तो होती ही नहीं। पर यह सबके लिये ही उचित हो, ऐसी बात भी नहीं है एवं छोड़ देनेमें कोई बड़ा भारी महत्त्व भी नहीं है।

३—डालडा (वेजिटेबल) की बनी हुई वस्तु भगवान्‌के भोग न लगायी जाय तो अच्छा ही है।

४—पतिकी इच्छाकी पूर्तिके लिये उनकी विलासिताके भावको पूर्ण करे, किंतु स्वयं उसके सुखका भोग न करे तो इसमें हरिभजन-में कोई बाधा नहीं आ सकती। ×××।

[३६]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। मैंने जो आपसे यह निवेदन किया था कि कौन सिद्ध पुरुष है—मैं नहीं जानता, इसका यह अभिप्राय नहीं था कि जगत्‌में कोई सिद्ध महापुरुष हैं ही नहीं। मेरा अभिप्राय तो इस विषयमें अपनी कमजोरी प्रकट करनेका था; क्योंकि मैं किसीकी पहचान करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हो सकता है कि मैं जिनको सिद्ध महापुरुष नहीं मानता, उन्हींमेंसे कोई सच्चा सिद्ध महापुरुष हो या जिनको मैं सिद्ध महापुरुष मान लूँ, वे वास्तवमें वैसे न हों। इसके अतिरिक्त मेरा परिचय ही बहुत कम लोगोंसे है। अतः आपको निराश नहीं होना चाहिये। आपको यदि अच्छे महात्मासे मिलनेकी सच्ची लगन होगी तो कोई-न-कोई मिल ही सकते हैं।

× × ×

आपका कार्य चालू है और मिनट-मिनट विभाजित है, यह अच्छी बात है। समय और अपनी शक्तिका सदुपयोग ही सर्वोत्तम साधन है।

आपके द्वारा अनुष्ठित साधन गलत होगा, ऐसा संदेह अपने साधनके प्रति क्यों होना चाहिये ? जिस साधनमें साधककी रुचि हो, जिसपर श्रद्धा हो और जो अनायास ही किया जा सके, वही उसके लिये उपयोगी है।

बातचीत होनेपर यदि आप मुझे अपनी परिस्थितिसे परिचित करा सकेंगे तो मेरा अपनी समझके अनुरूप आपको सलाह देनेका विचार है।

किसी दिव्य विभूति और सिद्धिसम्पन्न व्यक्तिका दर्शन होनेपर सूचना देनेके लिये लिखा, सो इसके लिये मैं लाचार हूँ; क्योंकि मैं किसीको अच्छी तरह पहचान सकूँ, ऐसा नहीं मानता।

---

[४०]

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण ! आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमसे इस प्रकार हैं—

(१) आपने जो सतत भगवान्‌का भजन करनेवाले और चौबीसों घंटे जप करनेवाले महात्माओंको देखा, सो बड़े सौभाग्यकी बात है। ऐसे महात्माओंका होना जगत्‌के लिये बड़ा हितकर है; परंतु यह पता लगना बड़ा ही कठिन है कि मनमें भजन भगवान्‌का होता है या नहीं। यह भी तो हो सकता है कि ऊपरसे तो भजन और जप करते हों पर मन दूसरा काम करता हो।

जमीनमें गड्ढा खोदकर ऊपरसे सीमेंट लगाकर समाधि लगाने-
वाले भी किसमें समाधि लगाते हैं, इसका पता नहीं । इस प्रकारकी
समाधि दिखानेवालोंका भगवत्प्राप्तिसे प्रायः सम्बन्ध सम्भव नहीं है ।

भगवान्‌को प्राप्त हुए महापुरुषोंके लक्षण गीतामें दूसरे अध्याय-
के ५५ वें से ५८ वें श्लोकतक, बारहवें अध्यायके १३ वेंसे १९ वें
श्लोकतक एवं चौदहवें अध्यायके २२ वेंसे २५वें श्लोकतक देखिये।
इसके सिवा, पाँचवें अध्यायमें भी कितने ही श्लोक हैं तथा दूसरे-
दूसरे अध्यायोंमें भी हैं; वहाँ भी देखना चाहिये ।

(२) भगवान्‌के भक्तोंकी रुचि भिन्न-भिन्न होती है, उनकी
रुचिके अनुसार भगवान् भी रूप धारण करते हैं । तामसी प्रकृति
और रुचिवाले मनुष्योंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये भगवान्
भूतनाथ शिवने अपना वैसा ही स्वरूप बनाया है । अन्यथा वैसी
प्रकृतिवाले लोग किसकी उपासना करते ? भगवान् परम दयालु हैं,
इसलिये वे सभी मनुष्योंको अपनी ओर लगानेकी सुविधा प्रदान
करते हैं ।

(३) कश्यपजी ऋषि थे, पर वे प्रजापति थे । अतः उनकी
अनेक पत्नियाँ थीं । प्रजाकी वृद्धि करना ही उनका काम था ।

रावणकी माता राक्षसी थी, इस कारण उसके उदरसे रावण
आदि राक्षस उत्पन्न हुए, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ।
रावणको पूर्वजन्ममें शाप भी हुआ था, इस कारण उसको राक्षसकी
योनिमें आना पड़ा ।

(४) अपने साथ कोई अत्याचार या बलात्कार करे तो भी

साधकको तो क्षमा ही करना चाहिये, उसका बदला लेने या क्रो करनेमें कोई लाभ नहीं है; क्योंकि बदला लेनेकी भावनासे औ क्रोध करनेसे न तो अत्याचारीका सुधार होता है और न क्रो करनेवालेको ही कोई लाभ है। क्षमा करनेसे क्षमा करनेवालेको त पूरा लाभ होगा ही; इसके अतिरिक्त अपराधीके हृदयका भी परिवर्तन हो सकता है।

(५) शरीरको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणी जैसे चींटी, खटमल, मच्छर आदि हैं, उनका प्रतीकार इस प्रकार किया जा सकता है जिसमें अपने शरीरकी भी रक्षा हो जाय और उनको भी किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचे। चींटियोंको तो अन्यत्र उनके खानेकी वस्तु रखकर हटाया जा सकता है। मच्छरोंसे रक्षाके लिये मच्छरदानी लगायी जा सकती है। खटमल उत्पन्न होनेसे पहले सफाई रखकर और यदि उत्पन्न हो जायँ तो सावधानीके साथ उनको अन्यत्र सुरक्षित स्थानमें हटाया जा सकता है।

इसी प्रकार खेतीमें नुकसान पहुँचानेवाले जानवरोंका प्रतीकार भी उनको कष्ट दिये बिना हो सके तो करना चाहिये। नहीं तो, यह समझना चाहिये कि सभी वस्तुएँ भगवान्‌की हैं और प्राणी भी सब उनके हैं; जो वस्तु जिसको मिलनेवाली होती है उसको मिलती है; अतः उन जीवोंकी हिंसा न करना ही साधकके लिये हितकर मालूम होता है।

(६) गङ्गाको भगवान्‌का चरणोदक भी माना जाता है, पर साथ ही उनकी उत्पत्ति भगवान् शङ्करकी जटामेंसे हुई है—यह

भी तो माना जाता है। भगवान् विष्णु भगवान् शङ्करको पूज्य मानते हैं, इस दृष्टिसे भगवान् विष्णु और श्रीशालग्रामजीको गङ्गाजलमें स्नान कराया जाना अनुचित नहीं है।

(७) एकादशी भगवत्सम्बन्धी व्रतका दिन है। अतः उस दिन मरनेवालेके हृदयमें भगवान्के उत्सवके कारण भगवान्की स्मृति रहनेसे उसकी मुक्ति हो सकती है। इसलिये उस दिन मरना श्रेष्ठ माना जाना ठीक ही है।

---

[४१]

सविनय प्रणाम। आपका पत्र मिला। आपने लिखा कि शास्त्रोंका कथन है कि जीवमात्रको अच्छे-बुरे कर्मोंके अनुसार पुण्य और पापोंके फल भोगने ही पड़ते हैं। और स्वर्ग-नरकसम्बन्धी अनेक बातें पुराणोंमें कही भी गयी हैं। सो यह सब ठीक है।

जीवितावस्थामें ही सुख-दुःख-प्राप्तिको स्वर्ग-नरक मान लिया जाय-लिखा सो सुख-दुःखप्राप्तिको स्वर्ग-नरकके तुल्य मान सकते हैं। इस लोकमें जो सुख-दुःख मिलता है, उसमें पुण्यका फल सुख और पापका फल दुःख है, यह तो एक अंशमात्र है। संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। इस मनुष्ययोनिमें तो पुण्य-पापका फल-रूप सुख-दुःख बहुत ही अल्प मिलता है बाकी सब-का-सब दूसरी ही योनियोंमें भोगना पड़ता है।

स्वर्ग-नरकके दो भेद हैं—एक स्थानविशेष और एक योनि-विशेष। स्वः, महः, जन, तप आदि स्थानविशेष स्वर्ग हैं। कुम्भी-

गीताके ९ । २२ की टीकामें सकाम भक्तका योगक्षेम भी भगवान् वहन करते हैं, यह बात भी एक अलग प्रश्नोत्तर देकर स्पष्ट कर दी गयी है, जिसे आप गीतातत्त्वविवेचनी टीकामें देख सकते हैं और उस श्लोककी टीकाको मननपूर्वक पढ़नेपर आपकी इस शङ्काका समाधान अच्छी तरह हो सकता है। इस श्लोकमें जो निष्कामभाव शब्द रक्खा गया है, वह एक तो 'परि' का स्पष्ट अर्थ बतलानेके लिये है, दूसरे भगवान्‌की उपासना यदि निष्कामभावसे की जाय तो उससे शीघ्र भगवत्प्राप्ति हो सकती है; अतः लोग शीघ्र भगवत्प्राप्ति करनेवाले मार्गको पकड़ें, इस उद्देश्यसे भी यह शब्द रक्खा गया है।

आपने उपमन्युका उदाहरण दिया, सो ठीक है। भगवान् प्रायः सभी जगह अपने अनन्य भक्तका लौकिक योगक्षेम भी वहन करते हैं, किंतु यदि किसी जगह वे नहीं भी वहन करते तो वहाँ उस भक्तका योगक्षेम वहन न करनेमें ही हित समझते हैं।

आपको गीता ९ । २२ में निष्काम शब्दका व्यवहार करना ठीक नहीं लगा, सो ठीक है। भगवान्‌ने यहाँ तो निष्काम भक्तकी ही बात कही है; क्योंकि यहाँ एक 'अनन्याः' पद और पड़ा हुआ है। जबतक अन्य किसी भी पदार्थकी कामना होगी, तबतक 'अनन्य' कहाँ हुआ, अनन्य होनेपर किसी भी वस्तुकी कामना नहीं रहेगी। अतः यह श्लोक निष्काम भक्तके विषयका ही है; किंतु गीतामें जगह-जगह सकाम भक्तकी भी बात कही गयी है (७ । २३ और ९ । २५)। आप उसीको मानकर उपासना कर सकते हैं।

मैंने जो यह लिखा है कि भगवान् साधनके विघ्नको मिटाते

हैं। इसपर आपने पूछा कि 'क्या भक्तके सांसारिक कष्ट भगवान् नहीं दूर करते ?' तथा आपने इसके लिये १८। ५८ के श्लोकका प्रमाण देकर द्रौपदीका संकट क्या साधनका विघ्न नहीं है लिखा, सो ठीक है। मैंने जो साधनविघ्नको भगवान् मिटाते हैं, यह बात लिखी है उसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान् सांसारिक कष्ट दूर करते ही नहीं। भगवान् तो सांसारिक तथा साधनके सभी संकट दूर करते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं। १८। ५८ की टीकामें भी स्पष्ट लिखा है कि 'मेरी दयाके प्रभावसे अनायास ही तुम्हारे इस लोक और परलोकके समस्त दुःख टल जायँगे।' इसका अभिप्राय यही है कि इस लोकके सांसारिक दुःख तथा परलोकविषयक साधनके विघ्न सभी दूर हो जायँगे। द्रौपदीका संकट-निवारण भी सांसारिक दुःख-निवारण करनेके अन्तर्गत ही है। उसे आप साधनका विघ्न भी मानें तब भी कोई आपत्ति नहीं है। हाँ, कहीं-कहीं भगवान् सांसारिक कष्ट या साधनके विघ्नोंका निवारण नहीं भी करते, वहाँ उसे न करनेमें ही भक्तका हित है, इसलिये नहीं करते।

निरन्तर भजन-ध्यान करनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। समय बीता जा रहा है। अब शीघ्र चेतना चाहिये और अपने मानव-जीवनके अमूल्य समयको अमूल्य काममें ही लगाना चाहिये। हर समय भगवान्का स्मरण करना—यह सबसे बढ़कर अमूल्य कार्य है।

[४३]

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपने पूछा—आजकल नामजपका प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं देखा,